श्री राममुनि विरचित

पाहुड-दोहा

(हिन्दी अनुवाद सहित)

प्रकाशक

श्री कुन्दकुन्द-कहान मोक्षार्थी परिवार

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

ॐ

श्री राममुनि विरचित

पाहुड-दोहा

(हिन्दी अनुवाद सहित)

गुरु दिणयरु गुरु हिमकरणु गुरू दीवउ गुरु देउ।
अप्पापरहं परंपरहं जो दरिसावइ भेउ॥१॥

अर्थ :—जो परंपरा से आत्मा और पर का भेद दर्शाते हैं ऐसे गुरू ही दिनकर हैं, गुरू ही हिम किरण–चन्द्र हैं, गुरू ही दीपक हैं और वें गुरू ही देव हैं।

अप्पायतउ जं जि सुहु तेण जि करि संतोसु।
परसुहु वढ चिंतंतहं हियइ ण फिटटइ सोसु॥२॥

अर्थ :—हे वत्स! जो सुख आत्मा के आधीन है, उसी से तू संतोष कर! जो परमें सुखका चिन्तन करता है, उसके मनका सोच कभी नहीं मिटता।

जं सुहु विसयपरंमुहउ णिय अप्पा ज्ञायंतु।
तं सुहु इंदु वि णउ लहइ देविंहि कोडि रमंतु॥३॥

अर्थ :—विषयोंसे परांगमुख होकर, अपने आत्माके ध्यानमें जो सुख होता है, वह सुख करोडों देविओंके साथ रमण करनेवाले इन्द्रको भी नहीं मिल सकता।

आभुंजंता विसयसुह जे णं वि हियइ धरंति।
ते सासयसुहु लहु लहहिं जिणवर एम भणंति॥४॥

अर्थ :—विषय सुखको भोगते हुये भी जो अपने हृदयमें उसको धारण नहीं करते (अर्थात् उसमें सुख नहीं मानते), वे अल्पकालमें शाश्वत सुख प्राप्त करते हैं।—ऐसा जिनवर कहते हैं।

ण वि भुंजंता विसय सुह हियडइ भाउ धरंति।
सालिसित्थु जिम वप्पुडउ णर णरयहं णिवडंति॥५॥

अर्थ :—विषयसुखका उपभोग न करते हुए भी जो अपने हृदयमें उसको भोगनेका भाव धारण करते हैं, वे नर बेचारे 'शालिसिक्ख मच्छ' (तंदुल मच्छ) की तरह नरकमें जा पडते हैं।

ओयइं अडवड वडवडइ पर रंजिज्जइ लोउ।
मणसुद्धइं णिच्चलठियइं पाविज्जइ परलोउ॥६॥

अर्थ :—लोग आपत्तिके समयमें अटपट बड़बड़ाते हैं तथा परसे रंजित हो जाते हैं, परन्तु उससे कुछ भी सिद्धि नहीं होती; अपने मनकी शुद्धतासे तथा निश्चल स्थिरतासे जीव परलोकको (परमात्मदशाको) प्राप्त करता है।

धंधइं पडियउ सयलु जगु कम्मइं करइ अयाणु।
मोक्खहं कारणु एक्कु खणु ण वि चिंतइ अप्पाणु॥७॥

अर्थ :—धन्धेमें पड़ा हुआ सकल जगत अज्ञानवश कर्म तो करता है, परन्तु मोक्षके कारणभूत अपने आत्माका चिन्तन एक क्षण भी नहीं करता।

जोणिहिं लक्खहिं परिभमइ अप्पा दुक्खु सहंतु।
पुत्तकलत्तइं मोहियउ जाम ण बोहि लहंतु॥८॥

अर्थ :—जब तक यह आत्मा बोधिकी प्राप्ति नहीं करता, तबतक स्त्री-पुत्रादिकमें मोहित होकर दुःख सहता हुआ लाखों योनियोंमें परिभ्रमण करता है।

अण्णु म जाणहि अप्पणउ घरु परियणु तणु इट्ठु।
कम्मायतउ कारिमउ आगमि जोइहिं सिट्ठु॥९॥

अर्थ :—हे जीव! जिन्हें तू इष्ट समझ रहा है–ऐसे घर, परिजन और शरीर–ये सब पदार्थ तेरेसे अन्य हैं, उन्हें तू अपना मत जान, ये सब बाह्य जंजाल कर्मोके आधीन हैं—ऐसा योगियोंने आगममें बताया है।

जं दुक्खु वि तं सुक्खु किउ जं सुहु तं पि य दुक्खु।
पइं जिय मोहहिं वसि गयइं तेण ण पायउ मुक्खु॥१०॥

अर्थ :—हे जीव! मोहके वशमें पडकर तुने दुःखको सुख मान लिया है और सुखको दुःख मान लिया है; इस कारण तूने मोक्ष नहीं पाया।

मोक्खु ण पावहि जीव तुहुं घणु परियणु चितंतु।
तो इ विचिंतहि तउ जि तउ पावहि सुक्खु महंतु॥११॥

अर्थ :—हे जीव! तू धन और परिजनका चिन्तन करनेसे मोक्ष नहीं पा सकता; अतः तू अपने आत्माका ही चिन्तन कर, जिससे तू महान सुखको पावेगा।

धरवासउ मा जाणि जिय दुक्कियवासउ एहु।
पासु कयंते मंडियउ अविचलु ण वि संदेहु॥१२॥

अर्थ :—हे जीव! उस धन–परिजनको तू गृहवास मत समझ; वह तो दुष्कृत्यका धाम है और वह यमका फैलाया हुआ फन्दा है–इसमें सन्देह नहीं।

मूढा सयलु वि कारिमउ मं फुडु तुहु तुस कंडि।
सिवपई णिम्मलि करहि रइ घरु परियणु लहु छंडि॥१३॥

अर्थ :—हे मूढजीव! बाहरकी ये सब कर्मजाल है। प्रगट तुस

(भूसे) को तू मत कूट! घर–परिजनको शीघ्र छोडकर निर्मल शिवपदमें प्रीति कर!

मोहु विलिज्जइ मणु मरइ तुट्टइ सासु णिसासु।
केवलणाणु वि परिणवइ अंबरि जाह णिवासु॥१४॥

अर्थ :—आकाश (अर्थात् शुद्धात्मा) में जिसका निवास हो जाता है, उसका मोह नष्ट हो जाता है, मन मर जाता है, श्वासोश्वास छूट जाता है और वह केवलज्ञानरूप परिणमता है।

सप्पि मुक्कि कंचुलिय जं विसु ते ण मुएइ।
भोयहं भाउ ण परिहरइ लिंगग्गहणु करेइ॥१५॥

अर्थ :—सर्प बाहरमें केंचुलीको तो छोड़ देता है, परन्तु भीतरके विषको नहीं छोड़ता; उसी प्रकार अज्ञानीजीव द्रव्यलिंग धारण करके बाह्यत्याग तो करता है, परन्तु अन्तरमेंसे विषयभोगोंकी भावनाका परिहार नहीं करता।

जो मुणि छंडिवि विसयसुह पुणु अहिलासु करेइ।
लुंचणु सोसणु सो सहइ पुणु संसारु भमेइ॥१६॥

अर्थ :—जो मुनि छोड़े हुए विषयसुखोंकी फिरसे अभिलाषा करता है, वह मुनि केशलोचन एवं शरीरशोषणके क्लेशको सहन करता हुआ भी संसार में ही परिभ्रमण करता है।

विसयसुहा दुइ विवहडा पुणु दुक्खहं परिवाडि।
भुल्लउ जीव म वाहि तुहुं अप्पाखंधि कुहाडि॥१७॥

अर्थ :—ये विषयसुख तो दो दिन रहनेवाले क्षणिक हैं, फिर तो दुःखोंको ही परिपाटी है। इसलिये हे जीव! भूल कर तू अपने ही कन्धे पर कुल्हाड़ी मत मार।

उव्वलि चोप्पडि चिट्टठ करि देहि सुमिट्ठाहार।
सयल वि देह णिरत्थ गय जिह दुज्जणउवयार॥१८॥

अर्थ :—जैसे दुश्मनके प्रति किये गये उपकार बेकार जाते हैं; वैसे हे जीव! तू इस शरीरको स्नान कराता है, तैलमर्दन कराता है तथा सुमिष्ट भोजन खिलाता है; वे सब निरर्थक जानेवाले हैं अर्थात् यह शरीर तेरा कुछ भी उपकार करनेवाला नहीं है; अतः तू इसकी ममता छोड़ दे।

अथिरेण थिरा मइलेण णिम्मला णिग्गुणेण गुणसारा।
काएण जा विढप्पइ सा किरिया किण्ण कायव्वा॥१९॥

अर्थ :—अस्थिर, मलिन और निर्गुण—ऐसी कायासे स्थिर, निर्मल तथा सारभूत गुणवाली क्रिया क्यों न की जाय? (अर्थात् यह शरीर विनाशी, मलिन एवं गुणरहित हैं, उसकी ममता छोड़कर उसमें स्थित अविनाशी, पवित्र एवं सारभूत गुणवाले आत्माकी भावना करना चाहिए।)

वरु विसु विसहरु वरु जलणु वरु सेविउ वणवासु।
णउ जिणधम्मपरम्मुहउ मित्थतिय सहु वासु॥२०॥

अर्थ :—विष भला, विषधर भी भला, अग्नि या वनवासका सेवन भी अच्छा; परन्तु जिनधर्मसे विमुख ऐसे मिथ्याद्रष्टियोंका सहवास अच्छा नहीं।

उम्मूलिवि ते मूलगुण उतरगुणहिं विलग्ग।
वण्णर जेम पलंबचुय बहुय पडेविणु भग्ग॥२१॥

अर्थ :—जो जीव मूलगुणोंका उन्मूलन करके उत्तरगुणोंमें संलग्न रहता है, वह डालीसे चूके हुए बन्दरकी तरह नीचे गिरकर भग्न होता है। (मूलगुणसे भ्रष्ट जीव साधुपनेसे भ्रष्ट होता है।)

अप्पा बुज्झिउ णिच्चु जइ केवलणाणसहाउ।
ता पर किज्जइ काइं वढ तणु उप्परि अणुराउ॥२२॥

अर्थ :—यदि तूने आत्माको नित्य एवं केवलज्ञानस्वभावी जान लिया तो फिर हे वत्स! शरीरके ऊपर तू अनुराग क्यों करता है?

सो णत्थि इह पएसो चउरासीलक्खजोणिमज्झमि।
जिणवयणं अलहंतो जत्थ ण दुरंदुल्लिओ जीवो॥२३॥

अर्थ :—यहां चौरासी लाख योनियोंके मध्यमें ऐसा कोई प्रदेश बाकी नहीं रहा कि जहाँ जिनवचन को न पाकर इस जीवने परिभ्रमण न किया हो।

जसु मणि णाणु ण विप्फुरइ कम्महं हेउ करंतु।
सो मुणि पावइ सुक्खु ण वि सयलइं सत्थ मुणंतु॥२४॥

अर्थ :—जिसके चित्तमें ज्ञानका विस्फुरण नहीं हुआ है, तथा जो कर्मके हेतु (पुण्य-पाप) को ही करता है, वह मुनि सकल शास्त्रोंको जानता हुआ भी सच्चे सुखको नहीं पाता।

बोहिविवज्जिउ जीव तुहुं विवरिउ तच्चु मुणेहि।
कम्मविणिम्मिय भावडा ते अप्पाण भणेहि॥२५॥

अर्थ :—बोधिसे विवर्जित (रहित) हे जीव! तू तत्त्वको विपरीत मानता है, क्योंकि कर्मोंसे निर्मित भावोंको तू आत्माका समझता है।

हउं गोरउ हउं सामलउ हउं मि विभिण्णउ वण्णि।
हउं तणुअंगउ थूलु हउं एहउ जीव म मण्णि॥२६॥

अर्थ :—मैं गोरा हूँ, मैं साँवला हूँ, मैं विभिन्न वर्णवाला हूँ, मैं दुर्बलाँग हूँ, मैं स्थूल हूँ—ऐसा हे जीव! तू मत मान।

ण वि तुहुं पंडिउ मुक्खु ण वि ण वि ईसरु ण वि णीसु।
ण वि गुरु कोइ वि सीसु ण वि सव्वइं कम्मविसेसु॥२७॥

अर्थ :—तू न पण्डित है न मूर्ख, न ईश्वर है न सेवक, न गुरु है न शिष्य; ये सब विशेषतायें कर्मजनित हैं। (स्वभावसे सर्व जीव एक समान ज्ञानस्वरूपी है।)

ण वि तुहुं कारणु कज्जु ण वि ण वि सामिउ ण वि भिच्चु।
सूरउ कायरु जीव ण वि ण वि उत्तमु ण वि णिच्चु॥२८॥

अर्थ :—हे जीव! तू न किसीका कारण है न कार्य, न स्वामी है न सेवक, न शूर है न कायर और न उत्तम है न नीच।

पुण्णु वि पाउ वि कालु णहु धम्मु अहम्मु ण काउ।
एक्क वि जीव ण होहि तुहुं मिल्लिवि चेयणभाउ॥२९॥

अर्थ :—पुण्य-पाप, काल, आकाश, धर्म, अधर्म एवं काया—ये भी तू नहीं; हे जीव! चेतनभावको छोड़कर इनमें से एक भी तू नहीं है। (जीवके अशुद्धभाव तथा पाँच अजीव—इनसे भिन्न शुद्ध चेतनभाव ही तू है।)

ण वि गोरउ ण वि सामलउ ण वि तुहुं एक्क वि वण्णु।
ण वि तणुअंगउ थूलु ण वि एहउ जाणि सवण्णु॥३०॥

अर्थ :—तू न गोरा है न श्याम, एक भी वर्णवाला तू नहीं है; दुर्बल शरीर या स्थूल शरीर वह भी तू नहीं है—ये तो सब वर्णसहित (जड) हैं, तेरा स्वरूप उनसे भिन्न समझ।

हउं वरु बंभणु ण वि वइसु णु खतिउ ण वि सेसु।
पुरिसु णउंसउ इत्थि ण वि एहउ जाणि विसेसु॥३१॥

अर्थ :—न मैं श्रेष्ठ ब्राह्मण हूँ, न वैश्य हूँ, क्षत्रिय या अन्य

भी मैं नहीं हूँ; उसी प्रकार पुरुष, नपुंसक या स्त्री भी मैं नहीं हूँ—ऐसा विशेष जान।

तरुणउ बूढउ बालु हउं सूरउ पंडित दिव्वु।
खवणउ वंदउ सेवडउ एहउ चिंति म सव्वु॥३२॥

अर्थ :—मैं तरूण हूँ, बूढा हूँ, बालक हूँ, दिव्य पण्डित हूँ, क्षपणक अर्थात् दिगम्बर हूँ, वन्दक या श्वेताम्बर हूँ—ऐसा कुछ भी चिन्तन तू मत कर।

देहहो पिक्खिवि जरमरणु मा भउ जीव करेहि।
जो अजरामरु बंभु परु सो अप्पाण मुणेहि॥३३॥

अर्थ :—हे जीव! देहका जरा–मरण देखकर तू भय मत कर; अपने आत्माको तू अजर-अमर परमब्रह्म जान।

देहहि उब्भउ जरमरणु देहहि वण्ण विचित्त।
देहहो रोया जाणि तुहुं देहहि लिंगई मित्त॥३४॥

अर्थ :—जरा तथा मरण ये दोनों देहके हैं, विचित्र वर्ण भी देहके ही हैं और हे जीव रोगको भी तू शरीरका ही जान, एवं लिंग भी शरीरके ही हैं।

अत्थि ण उब्भउ जरमरणु रोय वि लिंगई वण्ण।
णिच्छइ अप्पा जाणि तुहुं जीवहो णेक्क वि सण्ण॥३५॥

अर्थ :–हे आत्मन्! निश्चय से तू ऐसा जान कि इनमें से एक भी संज्ञा जीवकी नहीं है; जरा या मरण ये दोनों जीवके नहीं है, रोग नहीं है तथा लिंग या वर्ण भी नहीं है।

कम्महं केरउ भावडउ जइ अप्पाण भणेहि।
तो वि ण पावहि परमपउ पुणु संसारु भमेहि॥३६॥

अर्थ :—हे जीव!। यदि तू कर्मके भावको आत्माका कहता है तो परमपदको तू नहीं पा सकेगा, बल्कि अब भी संसारमें ही भ्रमण करेगा।

अप्पा मिल्लिवि णाणमउ अवरु परायउ भाउ।
सो छंडेविणु जीव तुहुं झावहि सुद्धसहाउ॥३७॥

अर्थ :—ज्ञानमय आत्माके अतिरिक्त अन्य सब भाव पराये हैं; उन्हें छोड़कर हे जीव! तू शुद्ध स्वभावका ध्यान कर।

वण्णविहूणउ णाणमउ जो भावइ सब्भाउ।
संतु णिरंजणु सो जि सिउ तहिं किज्जइ अणुराउ॥३८॥

अर्थ :—जो वर्णसे रहित है, जो ज्ञानमय है, जो सद्‌भावको भाता है, वही शिव है (कल्याणरूप है); अतः उसीमें अनुराग करो।

तिहुयणि दीसइ देउ जिणु जिणवरि तिहुवणु एउ।
जिणवरि दीसइ सयलु जगु को वि ण किज्जइ भेउ॥३९॥

अर्थ :—तीन भुवन (लोक) में देव तो जिनवर ही दिखता है और जिनवरदेवमें ये तीन भुवन दिखते है; जिनवरके ज्ञानमें सकल जगत द्रष्टिगोचर होता है, उसमें कोई भेद न करना चाहिए।

बुज्झहु बुज्झहु जिणु भणइ को बुज्झउ हलि अण्णु।
अप्पा देहहं णाणमउ छुड्डु बुज्झियउ विभिण्णु॥४०॥

अर्थ :—कोई कहता है कि हे जीवो! तुम जिनको जानो.....जानो! किन्तु यदि ज्ञानमय आत्माको देह से अत्यन्त भिन्न जान लिया, तो भला! और क्या जाननेका शेष रहा?

वंदहु वंदहु जिणु भणइ को वंदउ हलि इत्थु।
णियदेहाहं वसंतयहं जइ जाणिउ परमत्थु॥४१॥

अर्थ :—कोई कहता है कि हे जीवो! तुम जिनवरको वन्दो.....जिनवर को वन्दो! परन्तु यदि अपने देहमें ही स्थित परमार्थको जान लिया, तो फिर भला अन्य किसकी वन्दना करना शेष रहा?

उपलाणहिं जोइय करहुलउ।
दावणु छोडहि जिम चरइ।
जसु अखइणि समइं गयउ मणु।
सो किम बुहु जगि रइ करइ॥४२॥

अर्थ :—जिसप्रकार हाथीका बच्चा अथवा ऊँट कमलको देखकर अपना बन्धन तोड़कर विचरण करने लगते हैं, उसप्रकार जिसका मन अक्षयिनी-रामा (मुक्तिरमणी) में लगा हुआ है ऐसा बुधजन जगत (संसार -बन्धन) में रति कैसे करे? (अर्थात् वह संसारके बन्धन तोड़कर मोक्षमार्गमें विचरता है।)

(दूसरा अर्थ :) अक्षय ऐसी मोक्षसुन्दरी में जिसका चित्त लगा है, वह बुधजन संसारमें रति क्यों करे? अतः हे जीव! तू ऊँटके ऊपर पलान रख और उसके बन्धन खोल दे, जिससे कि वह मोक्षकी ओर आगे बढे।

ढिल्लउ होहि म इंदियहं पंचहं विण्णि णिवारि।
एक्क णिवारहि जीहडिय अण्ण पराइय णारि॥४३॥

अर्थ :—हे जीव! पाँच इन्द्रियोंके सम्बन्धमें तू ढीला मत हो। (उग्रतासे उन्हें वशमें रख।) इनमें भी दो का निवारण कर, एक तो जीभको रोक और दूसरी पराई नारीको छोड़।

पंच बलद्द ण रक्खियइं।
णंदणवणु ण गओ सि।
अप्पु ण जाणिउ ण वि परु।
वि एमइ पव्वइओ सि॥४४॥

अर्थ :—रे जीव! तूने न तो पाँच बैल रखे और न कभी तू नन्दनवनमें गया, यों ही परिव्राजक कैसे बन गया? वैसे तूने न तो आत्माको जाना, न परको जाना—ऐसे ही परिव्राजक बन बैठा! (जिसने पाँच इन्द्रियरूपी बैलको वशमें नहीं किया और न स्व-परका भेदज्ञान करके चैतन्यके नन्दनवनमें प्रवेश किया, उसको प्रव्रज्या नहीं होती।)

पंचहिं बाहिरु णेहडउ हलि सहि लग्गु पियस्स।
तासु ण दीसइ आगमणु जो खलु मिलिउ परस्स॥४५॥

अर्थ :—हे सखी! पियुको तो बाहरमें पाँचका स्नेह लगा है; जो दुष्ट अन्यके साथ मिला हुआ है, उसका स्वघरमें आगमन नहीं दीखता। (पाँच इन्द्रियोंके विषयमें फँसा हुआ जीव स्वपरिणतिके आत्मिक आनन्दका अनुभव नहीं कर सकता।)

मणु जाणइ उवएसडउ जहिं सोवेइ अचिंतु।
अचित्तहो चित्तु जो मेलवइ सो पुणु होइ णिचिंतु॥४६॥

अर्थ :—मन चिन्तारहित–निश्चित होकर जब सो जाता है (अर्थात् एकाग्र होकर थंभ जाता है) तभी वह उपदेशको समझ सकता है और अचित्त वस्तुसे अपने चित्तको जो अलग करता है, वही निश्चिन्त होता है।

वट्टडिया अणुलग्गयहं अग्गउ जोयंताहं।
कंटउ भग्गइ पाउ जइ भज्ञउ दोसु ण ताहं॥४७॥

अर्थ :—जो आगे देखता हुआ मार्गमें (ध्येयके सम्मुख) चल रहा है, उसके पैरमें कदाचित् काँटा लग जाय तो लग जावे; इसमें उसका दोष नहीं है। (अर्थात् साधकको पूर्वकृत कोई अशुभ उदय आ जाये तो इसमें वर्तमान आराधनाका तो कोई दोष नहीं है।

मिल्लहु मिल्लहु मोक्कलउ जहिं भावइ तहिं जाउ।
सिद्धिमहापुरी पइसरउ मा करि हरिसु विसाउ॥४८॥

अर्थ :—उसे स्वतंत्र छोड दो......मुक्त कर दो......स्वाधीनतासे उसे जहाँ जाना हो वहाँ जाने दो; सिद्धि–महापुरीकी ओर उसे आगे बढ़ने दो। कुछ हर्ष-विषाद न करो। (आत्माको इन्द्रिय-विषयोंके बन्धन से मुक्त करके मोक्षपुरीकी ओर आनन्दसे जाने दो। जो मन पाँच इन्द्रियके विषयसे मुक्त हुआ, वह सिद्धपुरीकी ओर अग्रसर होता है।)

मणु मिलियउ परमेसरहो परमेसरु जि मणस्स।
बिण्णि वि समरसि हुइ रहिय पुज्ज चडावउं कस्स॥४९॥

अर्थ :—मन तो परमेश्वरमें मिल गया और परमेश्वर मनमें मिल गया; दोनों एक रस–समरस हो रहे हैं, तब मैं पूजन सामग्री किसको चढाऊँ ?

आराहिज्जइ देउं परमेसरु कहिं गयउ।
वीसारिज्जइ कांइ तासु जो सिउ सव्वंगउ॥५०॥

अर्थ :—रे जीव! तू देवका आराधन करता है, परन्तु तेरा परमेश्वर कहाँ चला गया? जो शिव-कल्याणरूप परमेश्वर सर्वांगमें विराज रहा है, उसको तू कैसे भूल गया?

अम्मिए जो परु सो जि परु परु अप्पाण ण होइ।
हउं डज्झउ सो उव्वरइ वलिवि ण जोवइ तो इ॥५१॥

अर्थ :—अहो! जो पर है सो पर ही है; पर कभी आत्मा नहीं होता। शरीर तो दग्ध होता है और आत्मा ऊपर चला जाता है, वह पीछे मुड़कर भी नहीं देखता। (इस प्रकार देह और आत्माके बीच सर्वथा भिन्नता है।)

मूढा सरलु वि कारिमउ णिक्कारिमउ ण कोइ।
जीवहु जंत ण कुडि गइय इउ पडिछंदा जोइ॥५२॥

अर्थ :—रे मूढ! ये सब (शरीरादिकका संयोग) तो कर्मजंजाल है, वे कोई निष्कर्म नहीं है (अर्थात् स्वाभाविक नहीं है)। देख! जीव चला गया, किन्तु देहकुटीर उसके साथ नहीं गई—इस दृष्टान्तसे दोनोंकी भिन्नता देख।

देहादेवलि जो वसइ सत्तिहिं सहियउ देउ।
को तहिं जोइय सत्तिसिउ सिगधु गवेसहि भेउ॥५३॥

अर्थ :—देहरूपी देवालयमें जो शक्तिसहित देव वास करता है, हे योगी! वह शक्तिमान शिव कौन है? इस भेदको तू शीघ्र ढूँढ।

जरइ ण मरइ ण संभवइ जो परि को वि अणंतु।
तिहुवणसामिउ णाणमउ सो सिवदेउ णिभंतु॥५४॥

अर्थ :—जो न जीर्ण होता है, न मरता है, न उपजता है, जो सबसे पर, कोई अनंत है, त्रिभुवनका स्वामी है और ज्ञानमय है, वह शिवदेव है—ऐसा तुम निर्भ्रान्त जानो।

सिव विणु सत्ति ण वावरइ सिउ पुणु सत्तिविहीणु।
दोहिं मि जाणहिं सयलु जगु बुज्झइ मोहविलीणु॥५५॥

अर्थ :—शिवके बिना शक्तिका व्यापार नहीं हो सकता और शक्तिविहीन शिव भी कुछ कर नहीं सकता; इन दोनोंका मिलन होते ही मोहका नाश होकर सकल जगतका बोध होता है। (गुण-गुणी सर्वथा भिन्न रहकर कुछ कार्य कर सकते नहीं; दोनों अभेद होकर ही कार्य कर सकते हैं—ऐसा वस्तुस्वरूप और जैनसिद्धांत है।)

अण्णु तुहारउ णाणमउ लक्खिउ जाम ण भाउ।
संकप्पवियप्पिउ णाणमउ दड्ढउ चित्तु वराउ॥५६॥

अर्थ :—तेरा आत्मा ज्ञानमय है, उसके भावको जबतक नहीं देखा, तबतक चित्त बेचारा दग्ध और संकल्प-विकल्प सहित अज्ञानरूप प्रवर्तता है।

णिच्चु णिरामउ णाणमउ परमाणंदसहाउ।
अप्पा बुज्झिउ जेण परु तासु ण अण्णु हि भाउ॥५७॥

अर्थ :—नित्य, निरामय, ज्ञानमय परमानंदस्वभावरूप उत्कृष्ट आत्मा जिसने जान लिया, उसको अन्य कोई भाव नहीं रहता। (अर्थात् ज्ञानसे अन्य समस्त भावोंको वह दूसरेका समझता है।)

अम्हहिं जाणिउ एकु जिणु जाणिउ देउ अणंतु।
णचरिसु मोहें मोहियउ अच्छइ दूरि भमंतु॥५८॥

अर्थ :—हमने एक जिनको जान लिया तो अनंत देवको जान लिया; इसके जाने बिना मोहसे मोहित जीव दूर भ्रमण करता है।

अप्पा केवलणाणमउ हियडइ णिवसइ जासु।
तिहुयणि अच्छइ मोक्कलउ पाउ ण लग्गइ तासु॥५९॥

अर्थ :—केवलज्ञानमय आत्मा जिसके हृदयमें निवास करता है, वह तीन लोकमें मुक्त रहता है और उसे कोई पाप नहीं लगता।

चिंतइ जंपइ कुणइ ण वि जो मुणि बंधणहेउ।
केवलणाणफुरंततणु सो परमप्पउ देउ॥६०॥

अर्थ :—जो मुनि बन्धनके हेतुको न चिंतन करता है, न कहता है और न करता है, (अर्थात् मनसे, वचनसे और कायासे बंधके हेतुका सेवन नहीं करता) वही केवलज्ञानसे स्फुरायमान शरीरवाला परमात्मदेव है।

अब्भिंतरचित्त वि मइलियइं बाहिरि काइं तवेण।
चित्ति णिरंजणु को वि धरि मुच्चहि जेम मलेण॥६१॥

अर्थ :—यदि अभ्यंतर चित्त मैला है तो बाहरके तपसे क्या लाभ? अतः हे भव्य! चित्तमें कोई ऐसे निरंजन तत्त्वको धारण करो कि जिससे वह मैल से मुक्त हो जाय।

जेण णिरंजणि मणु धरिउ विसयकसायहिं जंतु।
मोक्खह कारणु एत्तडउ अवरइं तंतु ण मंतु॥६२॥

अर्थ :—विषय-कषायोंमें जाते हुए मनको रोककर निरंजन तत्त्वमें स्थिर करो। बस! इतना ही मोक्षका कारण है। दूसरा कोई तंत्र या मंत्र मोक्षका कारण नहीं है।

खंतु पियंतु वि जीव जइ पावहि सासयमोक्खु।
रिसहु भडारउ किं चवइ सयलु वि इंदियसोक्खु॥६३॥

अर्थ :—अरे जीव! यदि तू खाता-पीता हुआ भी शाश्वत मोक्षको पा जाय तो भट्टारक ऋषभदेवने सकल इन्द्रिय-सुखोंको क्यों त्यागा?

देहमहेली एह वढ तउ सत्तावइ ताम।
चित्तु णिरंजणु परिण सिहुं समरति होइ ण जाम॥६४॥

अर्थ :—हे वत्स! जब तक तेरा चित्त निरंजन परमतत्त्वके साथ समरस-एकरस नहीं होता, तब तक ही देहवासना तुझे सताती है।

जसु मणि णाणु ण विप्फुरइ सव्व वियप्प हणंतु।
सो किम पावइ णिच्चसुहु सयलइं धम्म कहंतु॥६५।

अर्थ :—जिसको मनमें, सब विकल्पोंका हनन करनेवाला ज्ञान स्फुरायमान नहीं होता, वह अन्य सब धर्मोंको करे तो भी नित्य सुख कैसे पा सकता है?

जसु मणि णिवसइ परमपउ सयलइं चिंत चवेवि।
सो पर पावइ परमगइ अट्टइं कम्म हणेवि॥६६॥

अर्थ :—सब चिंताओंको छोडकर जिसके मनमें परमपदका निवास हो गया, वह जीव आठ कर्मोंका हनन करके परमगतिको पाता है।

अप्पा मिल्लिवि गुणणिलउ अण्णु जि झायहि झाणु।
वढ अण्णाणविमीसियहं कहं तहं केवलणाणु॥६७॥

अर्थ :—तु गुणनिलय आत्माको छोड़कर ध्यानमें अन्यको ध्याता है, परन्तु हे मूर्ख! जो अज्ञानसे मिश्रित है, उसमें केवलज्ञान कहाँ से होगा?

अप्पा दंसणु केवलु वि अण्णु सयलु ववहारु।
एक्कु सु जोइय झाइयइ जो तइलोयहं सारु॥६८॥

अर्थ :—केवल आत्मदर्शन ही परमार्थ है और सब व्यवहार है। तीन लोकका जो सार है ऐसे एक इस परमार्थको ही योगी ध्याते हैं।

अप्पा दंसणणाणमउ सयलु वि अण्णु पयालु।
इय जाणेविणु जोइयहु छंडहु मायाजालु॥६९॥

अर्थ :—आत्मा ज्ञान-दर्शनमय है, अन्य सब जंजाल है—ऐसा जानकर हे योगीजनों! मायाजालको छोडो।

अप्पा मिल्लिवि जगतिलउ जो परदव्वि रमंति।
अण्णु कि मिच्छादिट्ठियहं मत्थइं सिंगइं होंति॥७०॥

अर्थ :—जगतिलक आत्माको छोड़कर जो परद्रव्यमें रमण करते हैं..... तो क्या मिथ्याद्रष्टियोंके माथे पर सींग होते होंगे? (अर्थात् श्रेष्ठ आत्माको छोड़कर परमें रमण करते हैं, वे मिथ्याद्रष्टि ही है।)

अप्पा मिल्लिवि जगतिलउ मूढ म झायहि अण्णु।
जिं मरगउ परियाणियउ तहु किं कच्चहु गण्णु॥७१॥

अर्थ :—हे मूढ! जगतिलक आत्माको छोड़कर तू अन्य किसीका ध्यान मत कर। जिसने मरकतमणिको जान लिया, वह क्या काँचको कुछ गिनता है?

सुहपरिणामहिं धम्मु वढ असुहइं होइ अहम्मु।
दोहिं मि एहिं विवज्जियउ पावइ जीउ ण जम्मु॥७२॥

अर्थ :—हे वत्स! शुभ परिणामसे धर्म (पुण्य) होता है और अशुभ परिणामसे अधर्म (पाप) होता है (इन दोनोंसे तो जन्म होता है), किन्तु इन दोनोंसे विवर्जित जीव पुनः जन्म धारण नहीं करता, मुक्ति प्राप्त करता है।

सइं मिलिया सइं विहडिया जोइय कम्म णिभंति।
तरलसहावहिं पंथियहिं अण्णु कि गाम वसंति॥७३॥

अर्थ :—हे योगी! कर्म तो स्वयं मिलते हैं और स्वयं बिछुड़ते हैं (क्षणभंगुर हैं) ऐसा निःशंक जान। क्या चंचलस्वभावके पथिकोंसे कहीं गाँव बसते हैं? (जिसप्रकार पथिक तो रास्तेमें मिलते हैं और बिछुड़ते हैं, उनसे कहीं गाँव नहीं बसते; उसी प्रकार संयोग-वियोगरूप ऐसे क्षणभंगुर पुद्गल-कर्मोंसे चैतन्यका नगर नहीं बसता। आत्माको ये कर्मोंके संयोग-वियोगसे भिन्न जानो।

अण्णु जि जीउ म चिंति तुहं जइ वीहउ दुक्खस्स।
तिलतुसमित्तु वि सल्लडा वेयण करइ अवस्स॥७४॥

अर्थ :—हे जीव! यदि तू दुःखसे भयभीत है तो अन्यको जीव मत मान (दूसरे जीवको तेरे से भिन्न जान) तथा अन्यका चिंतन मत कर, क्योंकि तिलके तुषमात्र भी शल्य अववश्य वेदना करती है।

अप्पाए वि विभावियइं णासइ पाउ खणेण।
सुरु विणासइ तिमिरहरु एक्कल्लउ णिमिसेण॥७५॥

अर्थ :—जैसे सूर्य, घोर अन्धकारको एक निमेषमात्रमें नष्ट कर देता है, उसीप्रकार आत्माकी भावना करनेसे पाप एक क्षणमें नष्ट हो जाते हैं।

जोइय हियडइ जासु पर एकु जि णिवसइ देउ।
जम्मणमरणविवज्जियउ तो पावइ परलोउ॥७६॥

अर्थ :—हे योगी! जिसके हृदयमें जन्म-मरण से रहित एक परमदेव निवास करता है, वह नरलोकको (सिद्ध पदको) प्राप्त करता है।

कम्मु पुशइउ जो खवइ अहिणव पेसु ण देइ।
परमणिरंजणु जो णवइ सो परमप्पउ होइ॥७७॥

अर्थ :—जो जीव पुराने कर्मोंको खपाता है, नये कर्मोंका प्रवेश नहीं होने देता तथा जो परम निरंजनतत्त्वको नमस्कार करता है, वह स्वयं परमात्मा बन जाता है।

पाउ वि अप्पहिं परिणवइ कम्मइं ताम करेइ।
परमणिरंजणु जाम ण वि णिम्मलु होइ मणेइ॥७८॥

अर्थ :—आत्मा जबतक निर्मल होकर परम निरंजनस्वरूपको नहीं जानता, तब तक ही वह पापरूप परिणमता है और तभी तक कर्मोंको बाँधता है।

अण्णु णिरंजणु देउ पर अप्पा दंसणणाणु।
अप्पा सच्चउ मोक्खपहु एहउ मूढ वियाणु॥७९॥

अर्थ :—आत्मा ही उत्कृष्ट निरंजनदेव है, आत्मा ही दर्शन-ज्ञान है, आत्मा ही सच्चा मोक्षपथ है—ऐसा हे मूढ! तू जान।

ताम कुतित्थइं परिभमइं धुत्तिम ताम करंति।
गुरुहुं पसाएं जाम ण वि देहहं देउ मुणंति॥८०॥

अर्थ :—लोक कुतीर्थमें तभी तक परिभ्रमण करते है और तभी तक धूर्तता करते हैं, जब तक वे गुरुके प्रसादसे देहमें ही रहे हुए देवको नहीं जान लेते।

लोहिं मोहिउ ताम तुहुं विसयहं सुक्ख मुणेहि।
गुरुहुं पसाएं जाम ण वि अविचल बोहि लहेहि॥८१॥

अर्थ :—हे जीव! तभी तक तू लोभसे मोहित होकर विषयोंमें सुख मानता है, जब तक गुरुप्रसादसे अविचल बोधको नहीं पाता।

उप्पज्जइ जेण विबोहु ण वि बहिरण्णउ तेण णाणेण।
तइलोयपायडेण वि असुंदरो जत्थ परिणामो॥८२॥

अर्थ :—जिससे विशेष बोध (भेदज्ञान) उत्पन्न न हो ऐसे तीनलोक संबंधी ज्ञानसे भी जीव बहिरात्मा ही रहता है और उसका परिणाम असुन्दर है—अच्छा नहीं।

तासु लीह दिढ दिज्जइ जिम पढियइ तिम किज्जइ।
अह व ण गम्मागम्मइ तासु भजेसहिं अप्पुणु कम्मइं॥८३॥

अर्थ :—आत्मा और कर्मके बीचमें भेदज्ञानकी दृढ़ रेखा खींच लेना चाहिये अर्थात् जैसा पढ़ा वैसा करना चाहिये; चित्तको इधर-उधर भटकाना नहीं चाहिये। ऐसा करनेवालेकी आत्मामें से कर्म दूर हो जाते हैं।

वक्खाणडा करंतु बुहु अप्पि ण दिण्णु णु चित्तु।
कणहिं जि रहिउ पयालु जिम पर संगहिउ बहुत्तु॥८४॥

अर्थ :—जो बिद्वान आत्माका व्याख्यान तो करते हैं, परन्तु अपना

चित्त उसमें नहीं लगाते तो उन्होंने अनाजके कणोंसे रहित बहुत–सा पयाल संग्रह किया।

पंडिय पंडिय पंडिया कण छंडिवि तुस कंडिया।
अत्थे गंथे तुट्ठो सि परमत्थु ण जाणहि मूढो सि॥८५॥

अर्थ :—पंडितों में पंडित ऐसा हे पंडित! यदि तू ग्रंथ और उसके अर्थोंमें ही संतुष्ट हो गया है, किन्तु परमार्थ–आत्माको जानता नहीं तो तू मूर्ख है; तूने कणको छोडकर तुषको ही कूटा है।

अक्खरडेहिं जि गव्विया कारणु ते ण मुणंति।
वंसविहत्था डोम जिम परहत्थडा धुणंति॥८६॥

अर्थ :—जो मोक्षके सच्चे कारणको तो जानते नहीं और मात्र अक्षरके ज्ञानसे ही गर्वित होकर घूमते हैं, वे तो जैसे वंशके बिना वेश्यापुत्र जहाँ-तहाँ हाथ लंबाकर भीख माँगता भटकता है, उसके जैसे हैं।

णाणतिडिक्की सिक्खि वढ किं पढियइं बहुएण।
जा सुंधुक्की णिड्डहइ पुण्णु वि पाउ खणेण॥८७॥

अर्थ :—हे वत्स! बहुत पढ़नेसे क्या है? तू ऐसी ज्ञानचिनगारी प्रगटाना सीख ले, जो प्रज्वलित होते ही पुण्य और पापको क्षणमात्रमें भस्म कर दे।

सयलु वि को वि तडप्फडइ सिद्धत्तणहु तणेण।
सिद्धत्तणु परि पावियइ चित्तहं णिम्मलएण॥८८॥

अर्थ :—सभी कोई सिद्धत्वके लिये तड़फड़ाते हैं, पर उस सिद्धत्वकी प्राप्ति चित्तकी निर्मलता से ही होती है।

केवलु मलपरिवज्जियउ जहिं सो ठाइ अणाइ।
तस उरि सतु जगु संचरइ परइ ण कोइ वि जाइ॥८९॥

अर्थ :—मलरहित ऐसे केवली अनादि स्थित हैं, उनके अंतरमें (ज्ञानमें) समस्त जगत् संचार करता है, परन्तु उसके बाहर कोई भी नहीं जा सकता।

अप्पा अप्पि परिट्ठियउ कहिं मि ण लग्गइ लेउ।
सव्वु जि दोसु महंतु तसु जं पुणु होइ अछेउ।।९०।।

अर्थ :—जब आत्मा आत्मामें ही परिस्थित हो आता है, तब उसे कोई लेप नहीं लगता और उसके जो कोई महादोष हों वे भी सब नाश हो जाते हैं।

जोइय जोएं लइयइण जइ धंधइ ण पडिसि।
देहकुडिल्ली परिखिवइ तुहुं तेमइ अच्छेसि।।९१।।

अर्थ :—हे योगी! योग लेकर फिर यदि तू धंधेमें नहीं पडेगा तो जिसमें तू रहता है, उस देहरूप कुटीरका क्षय हो जायगा और तू तो अक्षय रहेगा।

अरि मणकरह म रइ करहि इंदियविसयसुहेण।
सुक्खु णिरंतरु जेहिं ण वि मुच्चहि ते वि खणेण।।९२।।

अर्थ :—रे मनरूपी हाथी! तू इन्द्रिय-विषयके सुखोंमें रति मत कर। जिनसे निरंतर सुख नहीं मिलता, उनको तू क्षणमात्रमें छोड़ दे।

तूसि म रूसि म कोहु करि कोहें णासइ धम्मु।
धम्मिं णट्ठिं णरयगइ अह गउ माणुसजम्मु।।९३।।

अर्थ :—न राजी हो, न रोष कर, न क्रोध कर। क्रोधसे धर्मका नाश होता है; धर्मके नाश होनेसे नरकगति होती है तथा मनुष्यजन्म निष्फल जाता है।

हत्थ अहुट्ठहं देवली वालहं णा हि पवेसु।
संतु णिरंजणु तहिं वसइ णिम्मलु होइ गवेसु।।९४।।

अर्थ :—साढ़े तीन हाथकी देहमें संत-निरंजन बसता है, बालजीव उसमें प्रवेश कर सकते नहीं। तू निर्मल होकर उसको ढूँढ।

अप्पापरहं ण मेलयउ मणु मोडिवि सहस त्ति।
सो वढ जोइय किं करइ जासु ण एही सत्ति॥९५॥

अर्थ :—मनको सहसा मोड लेनेसे (स्वसन्मुख करनेसे) आत्मा और परका मिलान नहीं होता; परन्तु जिसकी इतनी भी शक्ति नहीं है वह मूर्ख योगी क्या करेगा?

सो जोयउ जो जोगवइ णिम्मलि जोइय जोइ।
जो पुणु इंदियवसि गयउ सो इह सावयलोइ॥९६॥

अर्थ :—योगी जो निर्मल ज्योतिको जगाते हैं वही योग है, किन्तु जो इन्द्रियोंके वश हो जाता है वह तो श्रावकलोक है।

बहुयइं पढियइं मूढ पर तालू सुक्कइ जेण।
एक्कु जि अक्खरु तं पढहु सिवपुरि गम्मइ जेण॥९७॥

अर्थ :—हे जीव! तू बहुत पढ़ा......पढ़–पढ़कर तेरा तालू भी सुख गया, फिर भी तू मूर्ख ही रहा। अब तू एक ही उस अक्षरको पढ़ कि जिससे शिवपुरीमें गमन हो।

अन्तो णत्थि सुईणं कालो थोओ वयं च दुम्मेहा।
तं णवर सिक्खियव्वं जिं जरमरणक्खयं कुणहि॥९८॥

अर्थ :—श्रुतियोंका अंत नहीं है, काल थोड़ा है और हम मंदबुद्धि हैं; अतः केवल इतना ही सीखना योग्य है कि जिससे जन्म–मरणका क्षय हो।

णिल्लक्खणु इत्थीबाहिरउ अकुलीणउ महु मणि ठियउ।
तसु कारणि आणी माहू जेण गवंगउ संठियउ॥९९॥

अर्थ :—निर्लक्षण (इंद्रियग्राह्य लक्षणोंसे पार), स्त्रीसे रहित और जिसके कोई कुल नहीं है ऐसा आत्मा मरे मनमें बस गया है; जिससे अब इन्द्रिय-विषयोंमें संस्थित मेरा मन वहाँ से पीछे हट गया है।

हउं सगुणी पिउ णिग्गुणउ णिल्लक्खणु णीसंगु।
एकहिं अंगि वसंतयहं मिलिउ ण अंगहिं अंगु॥१००॥

अर्थ :—मैं सगुण हूँ और मेरा पियु तो निर्गुण, निर्लक्षण तथा निसंग है; अतः वे एक ही अंग में बसते हुए भी उनका एक दूसरेके अंगसे अंगका मिलन नहीं होता।

सव्वहिं रायहिं छहरसहिं पंचहिं रूवहिं चित्तु।
जासु ण रंजिउ भुवणयलि सो जोइय करि मित्तु॥१०१॥

अर्थ :—जिसका चित्त सर्व रागोंमें, छह रसोंमें व पाँच रूपोंमें रंजित नहीं है ऐसे योगीको हे जीव! तू इस भुवनतलमें अपना मित्र बना।

तव तणुअं मि सरीरयहं संगु करि ट्ठिउ जाहं।
ताहं वि मरणदवक्कडिय दुसहा होइ णराहं॥१०२॥

अर्थ :—जिसका तप थोड़ा भी शरीरका संग करके स्थित है (अर्थात् जो तप करते हुए भी शरीरका महत्त्व रखता है) उस मनुष्यको भी मरणके दुस्सह दावानल सहन करना पड़ता है।

देह मलंतहं सवु गवइ मइ सुइ धारण धेउ।
तहिं तेहइं वढ अवसरहिं विरला सुमरहिं देउ॥१०३॥

अर्थ :—जब देह गलती है, तब मति-श्रुतकी धारणा-ध्येय सब गलने लगता है; हे वत्स! तब उस अवसरमें देवका स्मरण तो कोई विरले ही करते हैं।

उम्मणि थक्का जासु मणु भग्गा भूवहिं चारु।
जिम भावइ तिम संचरउ ण वि भउ ण वि संसारु।।१०४।।

अर्थ :—जिसका पवित्र मन संसारके सुन्दर पदार्थोंसे भागकर, मनसे पार ऐसे चैतन्यस्वरूपमें लग गया, फिर वह कहीं भी संचार करे तो भी उसे न भय है, न संसार।

जीव वहंति णरयगइ अभयपदाणें सग्गु।
वे पह जवला दरिसियइं जहिं भावइ तहिं लग्गु।।१०५।।

अर्थ :—जीवोंके वधसे नरकगति होती है और अभय प्रदान करनेसे स्वर्ग। जानेके लिये दो पथ तुमको बतला दिये। अब इनमें से जो अच्छा लगे, उसमें तुम लग जाओ।

सुक्खअडा दुइ दिवहडइं पुणु दुक्खहं परिवाडि।
हियडा हउं पइं सिक्खवमि चित्त करिज्जहि वाडि।।१०६।।

अर्थ :—इस संसारमें इन्द्रिय सुख तो दो दिनके हैं, फिर तो दुःखोंकी ही परिपाटी है। इस कारण हे हृदय! मैं तुझे सिखाता हूँ कि तेरे चित्तको तू बाड़ लगा अर्थात् मर्यादामें रख और उसको सच्चे मार्गमें लगा।

मूढा देह म रज्जियइ दह ण अप्पा होइ।
देहहं भिण्णु णाणमउ सो तुहुं अप्पा जोइ।।१०७।।

अर्थ :—हे मूढ! देहमें रंजायमान न हो; देह आत्मा नहीं हैं। देहसे भिन्न ज्ञानमय ऐसे आत्माको तू देख।

जेहा पाणहं झुंपडा तेहा पुत्तिए काउ।
तित्थु जि णिवसइ पाणिवइ तहिं करि जोइय भाउ।।१०८।।

अर्थ :—अरे! यह मूर्त काया तो घासकी झोपड़ी जैसी है; हे

योगी! उसमें जो प्राणवंत-चेतन निवास करता है, उसकी तू भावना कर।

मूलु छंडि जो डाल चडि कहं तह जोयाभासि।
चीरु ण वुणणहं जाइ वढ विणु उट्टियइं कपासि॥१०९॥

अर्थ :—मूलको छोड़कर जो डाल पर चढ़ना चाहता है, उसको योग-अभ्यास कैसा? हे वत्स! जैसे बिना औंटे हुए कपासमें से वस्त्र नहीं बुना जाता, उसीप्रकार मूलगुणके बिना उत्तरगुण नहीं होते।

सव्वियप्पहं तुट्टहं चेयणभावगयाहं।
कीलइ अप्पु परेण सिहु णिम्मलझाणठियाहं॥११०॥

अर्थ :—जिसके सर्व विकल्प छुट गये हैं और जो चेतनभावको प्राप्त हुआ है, वह आत्मा निर्मल ध्यानमें स्थित होकर परमात्माके साथ केलि करता है।

अज्जु जिणिज्जइ करहुलउ लइ पइं देविणु लक्खु।
जित्थु चडेविणु परममुणि सव्व गयागय मोक्खु॥१११॥

अर्थ :—हे भव्य! परम देवको लक्षमें लेकर, शीघ्र आज ही तू मस्त हाथीको जीत ले कि जिस पर चढ़कर परम मुनि सर्व गमनागमन से छूटकर मोक्षपुरीमें पहुँच जाते हैं।

करहा चरि जिणगुणथलिहिं तव विल्लडित पगाम।
विसमी भवसंसारगइ उल्लूरियहि ण जाम॥११२॥

अर्थ :—हे मस्तहाथी! हे करभा! इस विषम भवसंसारकी गतिका जबतक तू उच्छेदन न कर डाले, तबतक निजगुणरूपी बागमें मुक्तरूप से तपरूपी वेलको तू चर.....तेरे बन्धन (पैगाम) को खोल दिया है।

तव दावणु वय भियमडा समदम कियउ पलाणु।
संजमघरहं उमाहियउ गउ करहा णिव्वाणु॥११३॥

अर्थ :—जिसको तपरूपी दामन–लगाम है, व्रतरूपी चौकड़ा है तथा शम-दमरूपी पलाण है—ऐसे ऊँट पर बैठकर संयमधर निर्वाणको गये।

एक्क ण जाणहि वट्टडिय अवरु ण पुच्छहि कोइ।
अद्दुवियद्दहं डुंगरहं णर भंजंता जोइ।।११४।।

अर्थ :—एक तो स्वयं मार्गको जानते नहीं और दूसरे किसीसे पूछते भी नहीं—ऐसे मनुष्य वन-जंगल तथा पहाड़ोंमें भटक रहे हैं, उनको तू देख।

वट्ट जु छोडिवि मउलियउ सो तरुवरु अकयत्थु।
रीणा पहिय ण वीसमिय फलहिं ण लायउ हत्थु।।११५।।

अर्थ :—जो तरूवर रास्तेको छोड़कर दूर फला-फूला है वह नकामा है, न तो कोई थके हुए पथिक वहाँ विश्राम लेते हैं और न उसके फलोंको कोई हाथ लगाते हैं। (उसीप्रकार मार्गभ्रष्ट जीवोंका वैभव बेकार है।)

छहदंसणधंधइ पडिय मणहं ण फिट्टिय भंति।
एक्कु देउ छह भउ किउ तेण ण मोक्खहं जंति।।११६।।

अर्थ :—षट्दर्शनके धन्धेमें पड़े हुए अज्ञानिओंके मनकी भ्रान्ति न मिटी। अरे रे! एक देवके छह भेद किये, इससे वे मोक्ष नहीं जाते।

अप्पा मल्लिवि एक्कु पर अण्णु वइरिउ कोइ।
जेण विणिम्मिय कम्मडा जइ पर फेडइ सोइ।।११७।।

अर्थ :—एक अपने आत्माको छोड़कर अन्य कोई तेरा वैरी नहीं है; अतः हे योगी! जिस भावसे तूने कर्मोंका निर्माण किया है, उस परभावको तू मिटा दे।

जइ वारउं तो तहिं जि पर अप्पहं मणु ण धरेइ।
विसयहं कारणि जीवडउ णरयहं दुक्ख सहेइ।।११८।।

अर्थ :—यद्यपि मैं रोकता हूँ तो भी मन परमे जाता है। वह मन अपनेमें विषयको धारण करता है, परन्तु आत्माको धारण नहीं करता। मनके द्वारा विषयोंमें भ्रमण करनेके कारण जीव नरकोंके दुःखोंको सहता है।

जीव म जाणहि अप्पणा विसया होसहिं मज्झु।
फल किं पाकहि जेम तिम दुक्ख करेसहिं तुज्झ।।११९।।

अर्थ :—हे जीव! तू ऐसा मत जान कि ये विषय मेरे हैं और मेरे रहेंगे। अरे! ये दो किम्पाक फलकी तरह तुझे दुःख ही देंगे।

विसया सेवहि जीव तुहुं दुक्खहं साहिक एण।
तेण णिरारिउ पज्रलइ हुववहु जेम घिएण।।१२०।।

अर्थ :—हे जीव! तू विषयोंका सेवन करता है, किन्तु वे तो दुःखके ही देनेवाले हैं। जैसे घी के डालनेसे अग्नि प्रज्वलित होती है, वैसे विषयोंके द्वारा तू बहुत जल रहा है।

असरीरहं संधाणु किउ सो धाणुक्क णिरुत्तु।
सिवतत्तिं जिं संघियउ सो अच्छइ णिच्चिंतु।।१२१।।

अर्थ :—जिसने अशरीरीका सन्धान किया, वही सच्चा धनुर्धारी है; और चित्तको एकाग्र करके जिसने शिवतत्त्वको साध लिया, वही सच्चा निश्चिंत है।

हलि सहि काइं करइ सो दवाणु, जहिं पडिबिंबु ण दिसइ अप्पणु।
धंधवालु मो जगु पडिहासइ, धरि अच्छंतु ण घरवइ दीसइ।१२२।

अर्थ :—अली सखी! भला ऐसे दर्पणको क्या करें जिसमें आत्माका प्रतिबिंब न दिखे? मुझे तो यह जगत बहावरे सरीखा भासता है कि जिसे गृहपति घरमें होते हुवे भी उसका दर्शन नहीं होता।

जसु जीवंतहं मणु मुवउ पंचेंदियहं समाणु।
सो जाणिज्जइ मोक्कलउ लद्धउ पहु णिव्वाणु॥१२३॥

अर्थ :—जिसके जीते-जी पाँच इन्द्रिय सहित मनन मर गया, उसको मुक्त ही जानो; निर्वाणपथ उसने प्राप्त कर लिया।

किं किज्जइ बहु अक्खरहं जे कालिं खउ जंति।
जेम अणक्खरु संतु मुणि तव वढ मोक्खु कहंति॥१२४॥

अर्थ :—हे वत्स! थोडे ही कालमें क्षय हो जाते हैं ऐसे बहुतसे अक्षरोंको तुझे क्या करना है? मुनि तो जब अनक्षर (शब्दातीत–इन्द्रियातीत) हो जाते हैं, तब मोक्षको पाते हैं।

छहदंसणगंथि बहुल अवरुप्परु गज्जंति।
जं कारणु तं इक्कु पर विवरेरा जाणंति॥१२५॥

अर्थ :—षट्दर्शनके ग्रंथ एक-दूसरे पर बहुत गरजते हैं; उन सबसे परे मोक्षका जो एक कारण है, उसे तो कोई विरले ही जानते हैं।

सिद्धंतपुराणहिं वेय वढ बुज्झंतहं णउ भंति।
आणंदेण व जाम गउ ता वढ सिद्ध कहंति॥१२६॥

अर्थ :—हे वत्स! तू सिद्धान्तको तथा पुराणको जान उसके जाननेसे भ्रान्ति नहीं रहती। हे वत्स! जो आनन्दस्वरूपमें जम गये, वे सिद्ध कहलाते हैं।

सिवसत्तिहिं मेलावडा इहु पसुवाहमि होइ।
भिण्णिय सत्ति सिवेण सिहु विरला बुज्झइ कोइ॥१२७॥

अर्थ :—इस लोकमें शिव और शक्तिका मेला (मिलन) तो पशुओंमें भी होता है; परन्तु शिवसे भिन्न शक्तिवाले शिवको तो कोई विरला ही पहिचानता है। (लोग तो पशु आदिमें भी व्यापक ऐसे सर्वव्यापी शिवको मानते हैं, परन्तु उससे भिन्न अपने आत्माको ही शिवस्वरूप से तो कोई विरला ज्ञानी ही पहिचानता है।)

भिण्णउ जेहिं ण जाणियउ णियदेहहं परमत्थु।
सो अंधउ अवरहं अंधयहं किम दरिसावइ पंथु॥१२८॥

अर्थ :—जिसने देहसे भिन्न निज परमार्थतत्त्वको नहीं जाना, वह अन्धा दूसरे अन्धेको मुक्तिपंथ कैसे दिखलायेगा?

जोइय भिण्णउ झाय तुहुं देहहं ते अप्पाणु।
जइ देहु वि अप्पउ मुणहि ण वि पावहि णिव्वाणु॥१२९॥

अर्थ :—हे योगी! तुम देहसे भिन्न आत्माका ध्यान करो। यदि देहको अपना मानोगे तो तुम निर्वाण नहीं पा सकोगे।

छत्तु वि पाइ सुगुरुवडा सयलकालसंतावि।
णियदेहडइ वसंतयहं पाहण वाडि वहाइ॥१३०॥

अर्थ :—सुगुरु की महान छत्रछाया पाकर भी हे जीव! तू सकल काल संतापको ही प्राप्त हुआ। परमात्मा निजदेहमें बसते हुए भी तूने पत्थरके ऊपर पानी ढोला।

मा मुट्टा पसु गरुवडा सयल काल झंखाइ।
णियदेहहं मि वसंतयहं सुण्णा मढ सेवाइ॥१३१॥

अर्थ :—हे वत्स! सुगुरुका संग छोडकर तू सदा काल झंखना–व्यग्रता मत कर। परमात्मा निजदेहमें बसता हुआ भी तू शून्य मठका सेवन क्यों करता है?

सयवयल्लहिं छहरसहिं पंचहिं रूवहिं चित्तु।
जासु ण रंजिउ भुवणयलि सो जोइय करि मित्तु।।१३२।।

अर्थ :—हे जीव! इस भुवनतलमें तू ऐसे योगीको अपना मित्र बना कि जिसका चित्त रागके कलकलसे, छह रससे तथा पाँच रूपसे रंजित न हो।

तोडिवि सयल वियप्पडा अप्पहं मणु वि धरेहि।
सोक्खु णिरंतरु तहिं लहहि लहु संसारु तरेहि।।१३३।।

अर्थ :—समस्त विकल्पोंको तोड़कर मनको आत्मामें स्थिर कर, वहाँ तुझे निरंतर सुख मिलेगा और तू संसारको शीघ्र तिर जायेगा।

अरि जिय जिणवरि मणु ठवहि विसयकसाय चएहि।
सिद्धिमहापुरि पइसरहि दुक्खहं पाणिउ देहि।।१३४।।

अर्थ :—अरे जीव! तेरे मनमें जिनवरको स्थाप, विषय-कषायको छोड़, सिद्ध-महापुरीमें प्रवेश कर और दुःखोंको पानीमें जलांजलि दे।

मुंडियमुंडिय मुंडिया सिरु मुंडिउ चित्तु ण मुंडिया।
चित्तहं मुंडणु जिं कियउ संसारहं खंडणु तिं कियउ।।१३५।।

अर्थ :—मुंड़ मुंड़ानेवालेमें श्रेष्ठ हे मुंड़का! तूने शिरका तो मुंड़न किया, परंतु चित्तको न मुंड़ा। जिसने चित्तका मुण्ड़न किया, उसने संसारका खंड़न कर डाला।

अप्पु करिज्जइ काइं तसु जो अच्छइ सव्वंगओ संते।
पुण्णविसज्जणु काइं तसु जो हलि इच्छइ परमत्थे।।१३६।।

अर्थ :—सर्वांग में जो सुस्थित है, उस धर्मात्माको पाप क्या करेगा? उसी प्रकार जो परमार्थका इच्छुक है, उस सज्जनको पुण्यका भी क्या काम है?

गमणागमणविवज्ज्रियउ जो तइलोयपहाणु।
गंगइ गरुवइ देउ किउ सो सण्णाणु अयाणु॥१३७॥

अर्थ :—जो गमनागमनसे रहित है और तीनलोकमें प्रधान है ऐसे देवकी (तीर्थंकरदेवकी) की गरवी गंगा सुज्ञ पुरुषोंके लिये सम्यग्ज्ञान प्रगट करनेवाली है।

पुण्णेण होइ विहओ विहवेण मओ मएण मइमोहो।
मइमोहेण य णस्यं तं पुण्ण अम्ह मा होउ॥१३८॥

अर्थ :—पुण्यसे विभव मिलता है, विभवसे मद होता है, मद से मतिमोह होता है और मतिमोहसे नरक होता है। ऐसा पुण्य हमें न हो। (यहाँ अज्ञानीके पुण्यकी बात है।)

कासु समाहि करउं को अंचउं।
छोपु अछोपु भणिवि को वंचउं॥
हल सहि कलह केण सम्माणउं।
जहिं जहिं जोवउं तहिं अप्पाणउ॥१३९॥

अर्थ :—मैं जहाँ-जहाँ देखता हूँ, वहाँ सर्वत्र आत्मा ही दिखता है, तब फिर मैं किसकी समाधि करुँ और किसको पुजूँ? छूत-अछूत कहकर किसका तिरस्कार करुँ? हर्ष या क्लेश किसके साथ करुँ? और सन्मान किसका करूँ?

जइ मणि कोहु करिवि कलहीजइ।
तो अहिसेउ णिरंजणु कीजइ॥
जहिं जहिं जोयउ तहिं णउ को वि उ।
हउं ण वि कासु वि मज्झु वि को वि उ॥१४०॥

अर्थ :—यदि मन क्रोधाग्निसे कलुषित हो जाय तो निरंजन

तत्त्वकी भावनारूप निर्मलजलसे आत्माका अभिषेक करना कि जहाँ-जहाँ देखूँ वहाँ कोई भी मेरा नहीं है; न मैं किसीका हूँ, न कोई मेरा है। (ऐसी तत्त्वभावनाके द्वारा क्रोध शांत हो जाता है।)

णमिओ सि ताम जिणवर जाम ण मुणिओ सि देहमज्झम्मि।
जइ मुणिउ देहमज्झम्मि ता केण णवज्ञए कस्स।।१४१।।

अर्थ :—हे जिनवर! जब तक मैंने देहमें रहे हुए 'जिन'को न जाना, तब तक तुझे नमस्कार किया; परन्तु जब देहमें ही रहे हुए 'जिन'को जान लिया, तब फिर कौन किसको नमस्कार करे?

ता संकप्पवियप्पा कम्मं अकुणंतु सुहासुहाजणयं।
अप्पसरूवासिद्धी जाम ण हियए परिफुरइ।।१४२।।

अर्थ :—जीवको संकल्प-विकल्प तब तक रहता है, जब तक कि शुभाशुभ जनक कर्मका अकर्ता होकर, उसके अन्तरमें आत्मस्वरूपकी सिद्धि स्फुरायमान न हो जावे।

गहिलउ गहिलउ जणु भणइ गहिलउ मं करि खोहु।
सिद्धिमहापुरि पइसरइ उप्पाडेविणु मोहु।।१४३।।

अर्थ :—(१) हे जीव! लोग तेरेको 'हठीला-हठीला' कहते हैं तो भले कहो, किन्तु हे हठी! तू क्षोभ मत करना। (अर्थात् लोग तेरेको हठीला कहें, इससे तू तेरे मार्गको नहीं छोडना!) तू मोहको उखाड कर सिद्धि-महापुरीमें चले जाना।

(२) घेला (पागल) लोग तेरेको भी घेला—पागल सा कहें तो इसीसे तू क्षुब्ध नहीं होना। लोग कुछ भी कहें, तू तो मोह को उखाड कर महान सिद्धि नगरीमें प्रवेश करना।

अवधउ अक्खरु जं उप्पज्जइ।
अणु वि किं पि अण्णाउ ण किज्जइ।।

आयइं चित्तिं लिहि मणु धारिवि।
सोउ णिचिंतउ पाय पसारिवि॥१४४॥

अर्थ :—जीवोंका वध न करो और अन्यके साथ जरा भी अन्याय न करो, इतनी बात चित्तमें लिख लो और मनमें धारण कर लो—बस, फिर तुम निश्चिंत पांव पसार कर सोओ।

किं बहुएं अडवड वडिण देह ण अप्पा होइ।
देहहं भिण्णउ णाणमउ सो तुहुं अप्पा जोइ॥१४५॥

अर्थ :—बहुत अटपट बड़बड़ानेसे क्या? देह आत्मा नहीं है। देहसे भिन्न जो ज्ञानमय है वही तू आत्मा है। हे योगी! उसको तू देख!

पोत्था पढणिं मोक्खु कहं मणु वि असुद्धउ जासु।
बहुयारउ लुब्दउ णवइ मूलट्ठिउ हरिणासु॥१४६॥

अर्थ :—मन ही जिसका अशुद्ध है, उसे पोथा पढ़नेसे भी मोक्ष कैसा? वैसे तो हिरनका वध करनेवाला पारधी भी हिरनके सामने नमता है। (जैसे भावशुद्धिसे रहित उस पारधीका वह नमन, सच्चा नमन नहीं है, वैसे भावशुद्धिसे रहित शास्त्रपठन भी मोक्षका कारण नहीं होता। अतः हे जीव! तू भावशुद्धि कर।)

दयाविहीणउ धम्मडा णाणिय कह वि ण जोइ।
बहुएं सलिलविरोलियइं करु चोप्पडा ण होइ॥१४७॥

अर्थ :—जैसे बहुत पानीके विलोडनेसे हाथ चिकना नहीं होता (अर्थात् घी नहीं निकल पाता), वैसे दयासे रहित धर्म ज्ञानिओंने कहीं भी नहीं देखा।

भल्लाण वि णासंति गुण जहिं सहु संगु खलेहिं।
वइसाणरु लोहहं मिलिउ पिट्टिज्जइ सुघणेहिं॥१४८॥

अर्थ :—दुष्टजन-खलके संगसे भले पुरुषोंके गुण भी नष्ट हो जाते हैं, जैसे लोहेका संग करनेसे वैश्वानर (अर्थात् अग्निदेव) भी बडे-बडे घनोंसे पीटे जाते हैं।

हुयवहि णाइ ण सक्कियउ धवलतणु संखस्स।
फिट्टीसइ मा भंति करि छुड्डु मिलिया खयरस्स।।१४९।।

अर्थ :—अग्नि भी शंखके धवलत्वको नष्ट नहीं कर सकती, परन्तु यदि वह स्वयं खेर या काई से मिल जाय तो उसका धवलत्व मिट जाता है, इसमें भ्रांति न कर। (अतः कुसंगति न करना।)

संखसमुद्दहिं मुक्कियए एही होइ अवत्थ।
जो दुव्वाहहं चुंबिया लाएविणु गलि हत्थ।।१५०।।

अर्थ :—शंखके पेटमें रहे हुए मुक्ताफल मोतीके कारणसे उसकी ऐसी हालत होती है कि धीवर–मच्छीमार उसका गला फाडकर उस मोतीको बाहर निकालता है। (इस प्रकार परिग्रहसे जीव दुःखी होता है।)

छंडेविणु गुणरयणणिहि अग्घथडिहिं घिप्पंति।
तहिं संखाहं विहाणु पर फुक्किज्जंति ण भंति।।१५१।।

अर्थ :—गुणरत्ननिधि (अर्थात् समुद्र)का संग छोडनेसे शंखकी कैसी हालत होती है? अर्थात् बाजारमें उसका विक्रय होता है और बादमें किसीके मुँहसे फूँका जाता है, इसमें भ्रान्ति नहीं। (गुणीजनका संग छोड़नेसे ऐसा बेहाल होता है।)

महुयर सुरतरुमंजरिहिं परिमलु रसिवि हयास।
हियडा फुट्टिवि कि ण मुयउ ढंढोलंतु पलास।।१५२।।

अर्थ :—हे हताश मधुकर! कल्पवृक्षकी मंजरीका सुगंधयुक्त रस चख करके भी अब तू गंधरहित पलाशके उपर क्यों भ्रमता फिरता है?

अरे! ऐसा करते हुए तेरा हृदय फट क्यों नहीं गया? और तू मर क्यों नहीं गया? (अत्यंत मधुर चैतन्यरसका स्वाद लेनेके बाद अन्य नीरस विषयोंमें उपयोगका भ्रमण हो, उसमें ज्ञानीको मरण जैसा दुःख लगता है।)

मुंडु मुंडाइवि सिक्ख धरि धम्महं वद्धी आस।
णवरि कुडुंबउ मेलियउ छुड्डु मिल्लिया परास॥१६३॥
णग्गत्तणि जे गव्विया विग्गुत्ता ण गणंति।
गंथहं बाहिरभिंतरिहिं एक्कु इ ते ण मुयंति॥१६४॥

अर्थ :—मूंड मुंडाया, उपदेश लिया, धर्मकी आशा बढ़ी एवं कुटुम्बको छोड़ा, परकी आशा भी छोड़ी—इतना सब करने पर भी जो नग्नत्वसे गर्वित है और त्रिगुप्तिकी परवाह नहीं करता उसने तो बाह्य या अंतरंग एक भी ग्रंथ–परिग्रहको नहीं छोडा।

अम्मिय इहु मणु हत्थिया विंझह जंतउ वारि।
तं भंजेसइ सीलवणु पुणु पडिसइ संसारि॥१५५॥

अर्थ :—अरे! इस मनरूपी हाथीको विंध्य पर्वतकी ओर जानेसे रोको, अन्यथा वह शीलके वनको तोड़ देगा तथा जीवको संसारमें पटक देगा।

जे पढिया जे पंडिया जाहिं मि माणु मरट्टु।
ते महिलाण हि पिडि पडिय भमियहं जेम घरट्टु॥१५६॥

अर्थ :—जो पढ़े-लिखे है, जो पंडित है, जो मान-मर्यादावाले हैं, वह भी महिलाओंके पिण्डमें पड़कर चक्कीके पाटके समान चक्कर काटते हैं।

विद्धा वम्मा मुट्टिइण फसिवि लिहिहि तुहुं ताम।
जह संखहं जीहालु सिवि सड्डुच्छलइ ण जाम॥१५७॥

अर्थ :—रे विषयांध! तबतक ही तू विषयोंको मुष्टिमें लेकर चाख ले कि जबतक जिह्वालोलुपी शंखकी तरह तेरा शरीर सड़कर शिथिल हो जाय! (अर्थात् रे मूर्ख! क्षणभंगुर विषयोंमें क्यों राचता है? वे तो क्षणमें सड़ जायेंगे।)

पत्तिय तोडहि तडतडह णाइं पइट्टा उट्टु।
एव ण जाणहि मोहिया को तोडइ को तुट्टु।।१५८।।

अर्थ :—जैसे वनमें ऊँटने प्रवेश किया हो, वैसे हे जीव! तू तड़ातड़ पतियाँ तोड़ता है, परन्तु मोहके वशीभूत होकर तू यह नहीं जानता कि कौन तोड़ता है और कौन टूटता है? (अर्थात् वनस्पतिमें भी तेरे जैसा जीव है—ऐसा तू जान और उसकी हिंसा न कर।)

पत्तिय पाणिउ दब्भ तिल सव्वइं जाणि सवण्णु।
जं पुणु मोक्खहं जाइवउ तं कारणु कु इ अण्णु।।१५९।।

अर्थ :—पता, पानी, दर्भ, तिल—इन सबको तू सवर्ण (वर्णसहित, अचेतन) जान; फिर यदि मोक्षमें जाना हो तो उसका कारण कोई अन्य ही है—ऐसा जान। (पते, पानी आदि वस्तु देवको चढ़ानेसे मुक्ति नहीं मिलती, मुक्तिका कारण अन्य ही है।)

पत्तिय तोडि म जोइया फलहिं जि हत्थु म वहि।
जसु कारणि तोडेहि तुहुं सो सिउ एत्थु चढाहि।।१६०।।

अर्थ :—हे योगी! पत्तोंको मत तोड़ और फलोंको भी हाथ मत लगा, किन्तु जिसके लिये तू इन्हें तोड़ता है, उसी शिवको यहाँ चढ़ा दे! (व्यंग्य करते हुए कवि कहता है कि हे शिवपुजारी! वे शिव यदि पत्तेसे ही प्रसन्न हो जाते हैं तो उन्हें ही वृक्षके ऊपर क्यों नहीं चढ़ा देता?)

देवलि पाहणु तित्थि जलु पुत्थइं सव्वइं कव्वु।
वत्थु जु दीसइ कुसुमियउ इंधणु होसइ सव्वु॥१६१॥

अर्थ :—देवालयके पाषाण, तीर्थका जल या पोथीके सब काव्य इत्यादि जो भी वस्तु फूली-फली दिखती है, वह सब ईन्धन हो जायेंगी। (उन सबको क्षणभंगुर जानकर अविनाशी आत्माको ध्यावो।)

तित्थइं तित्थ भमंतयहं किण्णेहा फल हूव।
बाहिरु सुद्धउ पाणियहं अब्भिंतरु किम हूव॥१६२॥

अर्थ :—अनेक तीर्थोंमें भ्रमण करने पर भी कुछ फल तो न हुआ। बाह्यमें तो पानीसे शुद्ध हुआ, परन्तु अन्तर में कौनसी शुद्धि हुई ?

तित्थइं तित्थ भमेहि वढ धोयउ चम्मु जलेण।
एहु मणु किम धोएसि तुहुं मइलउ पावमलेण॥१६३॥

अर्थ :—हे वत्स! अनेक तीर्थोंमें तूने भ्रमण किया और शरीरके चमड़ेको जलसे धोया, परन्तु पापमलसे मलिन ऐसे तेरे मनको तू कैसे धोयेगा ?

जोइय हियडइ जासु ण वि इक्कु ण णिवसइ देउ।
जम्मणमरणविवज्जियउ किम पावइ परलोउ॥१६४॥

अर्थ :—हे योगी! जिसके हृदयमें जन्म-मरणसे रहित एक देव निवास नहीं करता, वह जीव पर-लोकको (मोक्षको) कैसे पावेगा ?

एक्कु सुवेयइ अण्णु ण वेयइ।
तासु चरिउ णउ जाणहिं देव इ॥
जो अणुहवइ सो जि परियाणइ।
पुच्छंतहं समिति को आणइ॥१६५॥

अर्थ :—एक तत्त्व तो अच्छी तरह जानता है, दूसरा तत्त्व कुछ नहीं जानता। सर्वको जाननेवाले ऐसे आत्मतत्त्वका चरित्र देव भी नहीं जानते; जो अनुभव करता है, वहीं उसको अच्छी तरह जानता है। पूछताछसे इसकी संतृप्ति कैसे होवे? (अर्थात् आत्मतत्त्व स्वानुभवगम्य है, वाद-विवाद से या पूछताछसे वह प्राप्त नहीं होता।)

जं लिहिउ ण पुच्छिउ कह व जाइ।
कहियउ कासु वि णउ चिति ठाइ।
अह गुरुउवएसें चिति ठाइ।
तं तेम धरंतिहिं कहिं मि ठाइ॥१६६॥

अर्थ :—जानते हुए भी वह तत्त्व लिखनेमें नहीं आता, पूछनेवालोंसे कहा भी नहीं जाता; कहनेसे किसी के चित्तमें वह नहीं ठहरता। गुरुके उपदेशसे यदि किसीके चित्तमें वह ठहरता है तो चित्तमें धारण करनेवालेके वह सर्वत्र अन्तरंगमें स्थित रहता है।

कड्ढइ सरिजलु जलहिविपिल्लिउ।
जाणु पवाणु पवणपडिपिल्लिउ॥
बोहु विबोहु तेम संघट्टइ।
अवर हि उत्तउ ता णु पयट्टइ॥१६७॥

अर्थ :—नदीका जल जलधिके द्वारा विरुद्ध दिशामें धकेला जाता है, बड़ा जहाज भी पवनके संघर्षसे विरुद्ध दिशामें खिंच जाता है; वैसे ज्ञान और अज्ञानका संघर्ष होने पर दूसरी ही प्रवृत्ति होती है। (कुसंगसे जीव अज्ञानकी ओर खिंच जाता है।)

बरि विविहु सद्दु जो सुम्मइ।
तहिं पइसरहुं ण वुच्चइ दुम्मइ॥

मणु पंचहिं सिहु अत्थवण जाइ।
मूढा परमतत्तु फुडु तहिं जि ठाइ॥१६८॥

अर्थ :—आकाशमें जो विविध शब्द (अर्थात् दिव्यध्वनिका उपदेश) हैं, सुमति उसका अनुसरण करता है; किन्तु दुर्मति जीव उसका अनुसरण नहीं करता। पाँच इन्द्रिय सहित मन जब अस्त हो जाता है, तब परमतत्त्व प्रगट होता है, उसमें हे मूढ! तू स्थिर हो!!

अखइ णिरामइ परमगइ अज्ज वि लउ ण लहंति।
भग्गी मणहं ण भंतडी तिम दिवहडा गणंति॥१६९॥

अर्थ :—अरे रे! अक्षय निरामय परमगतिकी प्राप्ति अभी तक न हुई। मनकी भ्रान्ति न मिटी और ऐसे ही दिवस बीते जा रहे हैं।

सहजअवत्थहिं करहुलउ जोइय जंतउ वारि।
अखइ णिरामइ पेसियउ सइं होसइ संहारि॥१७०॥

अर्थ :—हे योगी! विषयोंसे तेरे मनको रोककर शीघ्र सहज अवस्थारूप कर; अक्षय निरामय स्वरूपमें प्रवेश करते ही, स्वयं उस मनका संहार हो जायगा।

अखइ णिरामइ परमगइ मणु घल्लेप्पिणु मिल्लि।
तुट्टेसइ मा भंति करि आवागमणहं वेल्लि॥१७१॥

अर्थ :—अक्षय निरामय परमगतिमें प्रवेश करके मनको छोड़ दे। ऐसा करनेसे तेरी आवागमनकी बेल टूट जाएगी, इसमें भ्रान्ति न कर।

एमइ अप्पा झाइयइ अविचलु चित्तु धरेवि।
सिद्धिमहापुरि जाइयइ अट्ठ वि कम्म हणेवि॥१७२॥

अर्थ :—इसप्रकार चित्तको अविचल स्थिर करके आत्माका ध्यान होता है तथा अष्टकर्मको नष्टकर सिद्धि-महापुरीमें गमन होता है।

अक्खरचडिया मसिमिलिया पाढंता गय खीण।
एक्क ण जाणी परम कला कहिं उग्गउ कहिं लीण॥१७३॥

अर्थ :—स्याहीसे लिखे गये ग्रन्थ पठन करते-करते क्षीण हो गये, परन्तु हे जीव! तू कहाँ उत्पन्न हुआ और कहाँ लीन होगा—इस एक परम कलाको तूने न जाना। (मात्र शास्त्र-पठन किया, किन्तु आत्माको न जाना!)

वे भंजेविणु एक्कु किउ मणहं ण चारिय विल्लि।
तहि गुरुवहि हउं सिस्सिणी अण्णहि करमि ण लल्लि॥१७४॥

अर्थ :—जिन्होंने दो को मिटाकर एक कर दिया (अर्थात् भेद मिटाकर अभेद किया, राग-द्वेष मिटाकर समभाव किया) और विषयकषायरूपी बेलके द्वारा मनकी बेलिको चरने नहीं दिया—ऐसे गुरुकी मैं शिष्यानी हूँ, अन्य किसीकी लालसा मैं नहीं करती।

अग्गइं पच्छइं दहदिहहिं जहिं जोवउं तहिं सोइ।
ता महु फिट्टिय भंतडी अवसु ण पुच्छइ कोइ॥१७५॥

अर्थ :—आगे-पीछे, दशों दिशाओंमें जहाँ मैं देखूँ वहाँ सर्वत्र वही है; बस, अब मेरी भ्रान्ति मिट गइ, अन्य किसीसे पूछनेका न रहा।

जिम लोणु विलिज्जइ पाणियहं तिम जइ चित्तु विलिज्ज।
समरसि हूवइ जीवडा काइं समाहि करिज्ज॥१७६॥

अर्थ :—जैसे लवण पानीमें विलीन हो जाता है, वैसे चित्त चैतन्यमें विलीन होने पर जीव समरसी हो जाता है। समाधिमें इसके सिवाय और क्या करना है?

जइ इक्क हि पावीसि पय अंकय कोडि करीसु।
णं अंगुलि पय पयडणइं जिम सव्वंग य सीसु (?)॥१७७॥

अर्थ :—यदि एकबार भी उस चैतन्यदेवके पदको पाऊँ तो उसके साथमें अपूर्व क्रीडा करूँ। जैस कोरे घड़ेमें पानीकी बूँद सर्वांग प्रवेश कर जाती है, वैसे मैं भी उसके सर्वांगमें प्रवेश कर जाऊँ।

तित्थइं तित्थ भमंतयहं संताविज्जइ देहु।
अप्प अप्पा झाइयइं णिव्वाणं पउ देहु॥१७८॥

अर्थ :—एक तीर्थसे दूसरे तीर्थमें भ्रमण करनेवाला जीव मात्र देहका संताप करता है। आत्मामें आत्माको ध्यानेसे निर्वाणपदकी प्राप्ति होती है। अतः हे जीव! तू आत्माको ध्याकर निर्वाणकी ओर पैर बढ़ा।

जो पइं जोइउं जोइया तित्थइं तित्थ भमेइ।
सिउ पइं सिहुं हंहिंडियउ लहिवि ण सक्किउ तोइ॥१७९॥

अर्थ :—हे योगी! जिस पदको देखनेके लिये तू अनेक तीर्थोंमें भ्रमण करता फिरता है, वह शिवपद भी तेरे साथ ही साथ घूमता रहा, फिर भी तू उसे न पा सका! (क्योंकि तेरे शिवपदको तूने बाहरके तीर्थोंमें खोजा, परन्तु अन्तरस्वभावमें दृष्टि न करी।)

मूढा जोवइ देवलइं लोयहिं जाइं कियाइं।
देह ण पिच्छइ अप्पणिय जहिं सिउ संतु ठियाइं॥१८०॥

अर्थ :—मूढ जीव, लोगोंके द्वारा बनाये गये देवलमें देवको खोजते हैं, परन्तु अपने ही देह-देवलमें जो शिवसन्त विराजमान है, उसको वे नहीं देखते।

वामिय किय अरु दाहिणिय मज्झइं वहइ णिराम।
तहिं गामडा जु जोगवइ अवर वसावइ गाम॥१८१॥

अर्थ :—हे योगी! तूने बायीं ओर तथा दाहिनी ओर सर्वत्र इन्द्रिय-विषयरूपी ग्राम बसाये, परन्तु अन्तरको तो सूना रखा.....वहाँ भी

एक अन्य (इन्द्रियातीत) नगरको बसा दे।

देव तुहारी चिंत महु मज्झणपसरवियालि।
तुहं अच्छेसहि जाइ सुउ परइ णिरामइ पालि।।१८२।।

अर्थ :—हे देव! मुझे तुम्हारी चिन्ता है। जब यह मध्याह्नका प्रसार बीत जायगा, तब तू तो सोता रहेगा और यह पाली सूनी पडी रहेगी। (जबतक आत्मा है, तबतक इन्द्रियोंकी यह नगरी बसी हुई दिखती है; आत्माके चले जाने पर वह सब सुनकार उज्ञड हो जाता है। अतः विषयोंसे विमुख होकर आत्माको साध लेना चाहिए।)

तुट्टइ बुद्धि तडत्ति जहिं मणु अंरावणहं जाइ।
सो सामिय उवएसु कहि अण्णहिं देवहिं काइं।।१८३।।

अर्थ :—हे स्वामी! मुझे कोई ऐसा अपूर्व उपदेश दीजिये कि जिससे मिथ्याबुद्धि तड़ाकसे टूट जाय और मन भी अस्तंगत हो जाय। अन्य कोई देवका मुझे क्या काम है?

सयलीकरणु ण जाणियउ पाणियपण्णहं भेउ।
अप्पापरहु ण मेलयउ गंगडु पुज्जइ देउ।।१८४।।

अर्थ :—जो सकली करन को या पानी-पत्रके भेदको नहीं जानता तथा आत्माका परमात्माके साथ सम्बन्ध नहीं करता, वह तो पत्थरके टुकड़ेको देव समझकर पूजता है।

अप्पापरहं ण मेलयउ आवागमणु ण भग्गु।
तुस कंडंतहं कालु गउ तंदुलु हत्थि ण लग्गु।।१८५।।

अर्थ :—जिसने आत्माका परमात्मासे सम्बन्ध नहीं किया और न आवागमन मिटाया, उसे तुसके कूटते हुये बहुत काल बीत गया तो भी तन्दुलका एक दाना भी हाथमें न आया।

देहादेवलि सिउ वसइ तुहुं देवलइं णिएहि।
हासउ महु मणि अत्थि इहु सिद्धें भिक्ख भमेहि॥१८६॥

अर्थ :—देहरूपी देवालयमें तू स्वयं शिव बस रहा है और तू उसे अन्य देवलमें ढूँढता फिरता है। अरे! सिद्धप्रभु भिक्षाके लिये भ्रमण कर रहा है—यह देखकर मुझे हँसी आती है।

वणि देवलि तित्थइं भमहि आयासो वि णियंतु।
अम्मिय विहडिय भेडिया पसुलोगडा भमंतु॥१८७॥

अर्थ :—वनमें, देवालयोंमें तथा तीर्थोंमें भ्रमण किया, आकाशमें भी ढूँढा, परन्तु अरे रे! इस भ्रमणमें भेडिये और पशु जैसे लोगोंसे ही भेट हुई........(भगवानका तो कहीं दर्शन न हुआ!)

वे छंडेविणु पंथडा विच्चे जाइ अलक्खु।
तहो फल वेयहो किं पि णउ जइ सो पावइ लक्खु॥१८८॥

अर्थ :—पुण्य तथा पाप दोनोंके मार्गको छोड़कर अलखके अन्दर जाना होता है; उन दोनोंका (पुण्य-पापका) कुछ ऐसा फल नहीं मिलता कि जिससे लक्ष्यकी प्राप्ति हो।

जोइय विसमी जोयगइ
मणु वारणहं ण जाइ।
इंदियविसय जि सुक्खडा
तित्थइं वलि वलि जाइ॥१८९॥

अर्थ :—हे योगी! जोगकी गति विषम है; मन रोका नहीं जाता और इन्द्रिय-विषयोंके सुखमें बलि-बलि जाता है, फिर फिर इन्द्रिय-विषयोंमें भ्रमण करता है।

बादउ तिहुवणि परिभमइ मुक्कउ पउ वि ण देइ।
दिक्खु ण जोइय करहुलउ विवरेरउ पउ देइ।।१९०।।

अर्थ :—हे योगी! आश्चर्यकी बात देखो! यह चैतन्य-करभ (करभ याने हाथीका बच्चा अथवा ऊँट) की गति कैसी विपरीत–विचित्र है! कि जब वह बँधा हो तब तो तीनभुवनमें भ्रमण करता है और जब छूटा (मुक्त) हो, तब तो एक डग भी नहीं भरता। (जगतमें सामान्यतः ऐसा होता है कि ऊँट वगैरह प्राणी जब मुक्त हों, तब चारों तरफ घूमते रहते हैं और जब बँधे हुए हों तब घूम-फिर नहीं सकते। किन्तु यहाँ आत्माकी गति ऐसी विचित्र है कि जब वह कर्मबन्धनसे मुक्त होता है तब तो एक डग भी नहीं चलता–स्थिर ही रहता है और जब बन्धनमें बँधा हो तब तो चारों गतिमें–तीनलोकमें घूमता रहता है।)

संतु ण दीसइ ततु ण वि संसारेहिं भमंतु।
खंधावारिउ जिउ भमइ अवराडइहिं रहंतु।।१९१।।

अर्थ :—अरे रे! संसारमें भ्रमण करते हुए जीवको न सन्त दिखता है और न तत्त्व और वह परकी रक्षाका भार अपने कन्धे पर लेकर घूमता फिरता है। इन्द्रिय तथा मनरूपी फौजको साथ लेकर परकी रक्षाके लिये भ्रमण करता है।

उव्वस वसिया जो करइ वसिया करइ जु सुण्णु।
वलि किज्जउ तसु जोइयहि जासु ण पाउ ण पुण्णु।।१९२।।

अर्थ :—जो उजाड़को तो बसाता है और बसे हुएको उजाड़ता है, जिसे न पुण्य है न पाप। अहो! ऐसे योगीकी बलिहारी है! मैं उनको बलि-बलि जाता हूँ, अर्पणता करता हूँ।

कम्मु पुराइउ जो खवइ अहिणव पेसु ण देइ।
अणुदिणु झायइ देउ जिणु सो परमप्पउ होइ।।१९३।।

अर्थ :—जो पुराने कर्मोंको खिपाता है, नये कर्मोंको आने नहीं देता और प्रतिदिन जिनदेवको ध्याता है, वह जीव परमात्मा बन जाता है।

विसया सेवइ जो वि परु बहुला पाउ करेइ।
गच्छइ णरयहं पाहुणउ कम्मु सहाउ लएइ।।१९४।।

अर्थ :—तथा दूसरा, जो विषयोंका सेवन करता है तथा बहुत पाप करता है, वह कर्मका सहारा लेकर नरकका पाहुना (मेहमान) बन जाता है।

कुहिएण पूरिएण य छिद्देण य खारमुत्तगंधेण।
संताविज्जइ लोओ जह सुणहो चम्मखंडेण।।१९५।।

अर्थ :—जैसे कुत्ता चमड़ेके टुकड़ेमें मूर्छित होकर हैरान होता है, वैसे मूढ़ लोग कुत्सित और क्षार–मूत्रकी दुर्गन्धसे भरित शरीरमें मूर्छित होकर संतापको पाते हैं।

देखंताहं वि मूढ वढ रमियइं सुक्खु ण होइ।
अम्मिए मुत्तहं छिद्दु लहु तो वि ण विणडइ कोइ।।१९६।।

अर्थ :—हे मूर्ख! मल-मूत्रका धाम ऐसा यह मलिन शरीर, जिसके देखनेसे या जिसमें रमनेसे कहीं सुख तो नहीं होता, तो भी मूढ लोग कोई उसको छोड़ते नहीं।

जिणवरु झायहि जीव तुहुं
विसयकसायहं खोइ।
दुक्खु ण देक्खहि कहिं मि
वढ अजरामरु पउ होइ।।१९७।।

अर्थ :—हे जीव! तू जिनवरको ध्याव और विषय-कषायोंको छोड़।

हे वत्स! ऐसा करनेसे दुःख तेरेको नहीं दीखेगा और तू अजर-अमर पदको पावेगा।

विसयकसाय चएवि वढ अप्पहं मणु वि धरेहि।
चूरिवि चउगइ णित्तुलउ परमप्पउ पावेहि॥१९८॥

अर्थ :—हे वत्स! विषय-कषायोंको छोड़कर मनको आत्मामें स्थिर कर; ऐसा करनेसे चार गतिको चूर कर तू अतुल परमात्मपदको पावेगा।

इंदियपसरु णिवारियइं मण जाणहि परमत्थु।
अप्पा मल्लिवि णाणमउ अवरु विडाविड सत्थु॥१९९॥

अर्थ :—रे मन! तू इन्द्रियोंके फैलावको रोक और परमार्थको जान। ज्ञानमय आत्माको छोड़कर अन्य जो कोई शास्त्र है, वे तो वितंडावाद हैं।

विसया चिंति म जीव तुहुं सिवय ण भल्ला होंति।
सेवंताहं वि महुर वढ पच्छइं दुक्खइं दिंति॥२००॥

अर्थ :—हे जीव! तू विषयोंका चिन्तन मत कर; विषय भले नहीं होते। हे वत्स! सेवन करते समय तो वे विषय मधुर लगते है, परन्तु बादमें वे दुःख ही देते हैं।

विसयकसायहं रंजियउ अप्पहिं चित्तु ण देइ।
बंधिवि दुक्कियकम्मडा चिरु संसारु भमेइ॥२०१॥

अर्थ :—जो जीव विषय-कषायोंमें रंजित होकर आत्मामें चित्त नहीं देता, वह दुष्कृत कर्मोको बाँधकर दीर्घ काल तक संसारमें भ्रमण करता है।

इंदियविसय चएवि वढ करि मोहहं परिचाउ।
अणुदिणु झावहि परमपउ तो एहउ ववसाउ॥२०२॥

अर्थ :—हे वत्स! इन्द्रिय-विषयोंको छोड़, मोहका भी परित्याग कर, अनुदिन परमपदको ध्याव तो तेरेको भी ऐसा व्यवसाय होगा अर्थात् तू भी परमात्मा बन जायगा।

णिज्झियसासो णिप्फंदलोयणो मुक्कसयलवावारो।
एयाइं अवत्थ गओ सो जोयउ णत्थि संदेहो॥२०३॥

अर्थ :—निर्जित श्वास, निस्पंद लोचन और सकल व्यापारसे मुक्त—ऐसी अवस्थाकी प्राप्ति वही योग है, इसमें सन्देह नहीं।

तुट्टे मणवावारे भग्गे तह रायरोससब्भावे।
परमप्पयम्मि अप्पे परिट्ठिए होइ णिव्वाणं॥२०४॥

अर्थ :—जब मनका व्यापार टूट जाय, राग-रोषका भाव नष्ट हो जाय और आत्मा परमपदमें परिस्थित हो जाय, तभी निर्वाण होता है।

विसया सेवहि जीव तुहुं छंडिवि अप्पसहाउ।
अण्णइ दुग्गइ जाइसिहि तं एहउ ववसाउ॥२०५॥

अर्थ :—रे जीव! तू आत्मस्वभावको छोड़कर विषयोंका सेवन करता है तो तेरा यह व्यवसाय ऐसा है कि तू दुर्गतिमें जायगा। (अतः ऐसे दुर्व्यवसायको छोड़।)

मंतु ण तंतु ण धेउ ण धारणु।
ण वि उच्छासह किज्जइ कारणु॥
एमइ परमसुक्खु मुणि सुव्वइ।
एही गलगल कासु ण रुच्चइ॥२०६॥

अर्थ :—जिसमें न कोई मंत्र है न तंत्र, न ध्येय है न धारण, श्वासोश्वास भी नहीं है; इनमेंसे किसीको कारण बनाये बिना ही जो परमसुख है, उसमें मुनि सोते हैं—लीन होते हैं; यह गड़बड़ या कोलाहल उनको नहीं रुचता।

उववास विसेस करिवि बहु एहु वि संवरु होइ।
पुच्छइ किं बहु वित्थरिण मा पुच्छिज्जइ कोइ।।२०७।।

अर्थ :—विशेष उपवास करनेसे (परमात्मामें बसनेसे) अधिक संवर होता है। बहुत विस्तार क्यों पूछता है? अब किसीसे मत पूछ।

तउ करि दहविहु धम्मु करि जिणभासिउ सुपसिद्धु।
कम्महं णिज्जइ एह जिय फुडु अक्खिउ मइं तुज्झु।।२०८।।

अर्थ :—हे जीव! जिनवरभाषित सुप्रसिद्ध तप कर, दशविध धर्म कर; इस रीतिसे कर्मकी निर्जरा कर–यह स्पष्ट मार्ग मैंने तुझे बता दिया।

दहविहु जिणवरभासियउ धम्मु अहिंसासारु।
अहो जिय भावहि एक्कमणु जिम तोडहि संसारु।।२०९।।

अर्थ :—अहो जीव! जिनवरभाषित दशविध धर्मको तथा सारभूत अहिंसा धर्मको तू एकाग्र मनसे इसप्रकार भा जिससे कि तेरा संसार टूट जाय।

भवि भवि दंसणु मलरहिउ भवि भवि करउं समाहि।
भवि भवि रिसि गुरु होइ महु णिहयमणुब्भववाहि।।२१०।।

अर्थ :—भव-भवमें मेरा सम्यग्दर्शन निर्मल रहो, भव-भवमें मैं समाधि धारण करूँ, भव–भवमें ऋषि-मुनि मेरे गुरु हों और मनमें उत्पन्न होनेवाली व्याधिका निग्रह हो।

अणुपेहा बारह वि जिय भाविवि एक्कमणेण।
रामसीहु मुणि इम भणइ सिवपुरि पाहवि जेण।।२११।।

अर्थ :—हे जीव! **रामसिंह मुनि** ऐसा कहते हैं कि तू बारह अनुप्रेक्षाको एकाग्रमनसे इसप्रकार भा कि जिससे शिवपुरीकी प्राप्ति हो।

सुण्णं ण होइ सुण्णं दीसइ सुण्णं च तिहुवणे सुण्णं।
अवहरइ पावपुण्णं सुण्णसहावेण गओ अप्पा ॥२१२॥

अर्थ :—जो शून्य है वह सर्वथा शून्य नहीं है; तीनभुवनसे शून्य (खाली) होनेसे वह (आत्मा) शून्य दिखता है (परन्तु स्वभावसे तो वह पूर्ण हैं)। ऐसे शून्यसद्भावमें प्रविष्ट आत्मा पुण्य-पापका परिहार करता है।

वेपंथेहि ण गम्मइ वेमुहसूई ण सिज्जए कंथा।
विण्णि ण हुंति अयाणा इंदियसोक्खं च मोक्खं च ॥२१३॥

अर्थ :—अरे अजान! दो पथमें गमन नहीं हो सकता, दो मुखवाली सुई से कथरी नहीं सिली जाती; वैसे इन्द्रियसुख तथा मोक्ष-सुख—ये दोनों बात एकसाथ नहीं बनती।

उववासह होइ पलेवणा संताविज्जइ देहु।
धरु डज्झइ इंदियतणउ मोक्खहं कारणु एहु ॥२१४॥

अर्थ :—उपवाससे प्रतपन होनेसे देह संतप्त होता है और उस संतापसे इन्द्रियोंका घर दग्ध हो जाता है—यही मोक्षका कारण है।

अच्छउ भोयणु ताहं धरि सिद्धु हरेप्पिणु जेत्थु।
ताहं समउ जय कारियइं ता मेलियइ समत्तु ॥२१५॥

अर्थ :—अरे! उस घरका भोजन रहने दो कि जहाँ सिद्धका अपवर्णन (अवर्णवाद) होता हो। ऐसे (सिद्धका अवर्णवाद करनेवाले) जीवोंके साथ जयकार करनेसे भी सम्यक्त्व मलिन होता है।

जइ लद्धउ माणिक्कडउ जोइय पुहवि भमंत
बंधिज्जइ णियकप्पडइं जोइज्जइ एक्कंत ॥२१६॥

अर्थ :—हे योगी! पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए यदि माणिक मिल जाये तो वह अपने कपड़ेमें बाँध लेना और एकान्तमें बैठकर देखना।

(संसार-भ्रमणमें सम्यक्त्व रत्नको पाकर एकान्तमें फिर-फिर उसकी स्वानुभूति करना; लोगोंका संग मत करना।)

वादविवादा जे करहिं जाहिं ण फिट्टिय भंति।
जे रत्ता गउपावियइं ते गुप्पंत भमंति।।२१७।।

अर्थ :—वाद-विवाद करनेवालेकी भ्रांति नहीं मिटती। जो अपनी बड़ाईमें तथा महापापमें रक्त हैं, वे भ्रान्त होकर भ्रमण करते रहते हैं।

कायोऽस्तीत्यर्थमाहारः कायो ज्ञानं समीहते।
ज्ञानं कर्मविनाशाय तन्नाशे परमं पदम्।।२१८।।

अर्थ :—आहार है सो कायाकी रक्षाके लिये है, काया ज्ञानके समीक्षणके लिये है, ज्ञान कर्मके विनाशके लिये है तथा कर्मके नाशसे परमपदकी प्राप्ति होती है।

कालहिं पवणहिं रविससिहिं चहु एक्कटइं वासु।
हउं तुहिं पुच्छउ जोइया पहिले कासु विणासु।।२१९।।

अर्थ :—काल, पवन, सूर्य तथा चन्द्र—ये चारोंका इक्ट्ठा वास है। हे योगी! मैं तुझसे पूछता हूँ कि इनमें से पहले किसका विनाश होगा?

ससि पोखइ रवि पज्ञलइ पवणु हलोले लेइ।
सत्त रज्जु तमु पिल्लि करि कम्महं कालु गिलेइ।।२२०।।

अर्थ :—चन्द्र पोषण करता है, सूर्य प्रज्वलित करता है, पवन हिलोरे लेता है और काल सात राजूके अन्धकारको पेलकर कर्मोंको खा जाता है।

मुखनासिकयोर्म्मध्ये प्राणान् संचतें सदा।
आकाशे चरते नित्यं स जीवो तेन जीवति।।२२१।।

अर्थ :—मुख और नासिकाके मध्यमें जो सदा प्राणोंका संचार करता है और जो सदा आकाशमें विचरता है, उसीसे जीव जीता है। (अथवा, जो मुख तथा नासिकाके बीचमें प्राणवायुका संचार करता है तथा आकाशमें सदा विचरण करता है ऐसे प्राणवायुसे संसारी जीव जीते हैं।)

आपदा मूर्च्छितो वारिचुलुकेनापि जीवति।
अंभःकुंभसहस्त्राणां गतजीवः करोति किम्॥२२२॥

अर्थ :—जो आपदासे मूर्छित हुआ है, वह तो चुल्लुभर पानीके छिड़कनेसे भी जीवन्त (जागृत) हो जाता है; परन्तु जो गतजीव है (मृत्युको प्राप्त है) उसे तो पानीके हजारो घड़े भी क्या कर सकते हैं? (उसीप्रकार जिस जीवमें मुमुक्षता है, वह तो थोड़ेसे ही उपदेशसे भी जागृत हो जाता है, परन्तु जिसमें मुमुक्षुपना नहीं है, उसे तो हजारों शास्त्रोंका भी उपदेश निरर्थक है।)

॥ इय पाहुड–दोहा समता॥

॥ इति पाहुड–दोहाका अनुवाद समाप्त॥

अंतर्मुख अतीन्द्रिय सुख
बहिर्मुख ते बधु दुख॥
ज्ञानभाव छे सुखनुं धाम।
राग भावनुं शुं छे काम॥
आत्मलक्ष्मी खोल खजाना।
जो तुं चाहे मोक्षमें जाना॥
हूं छूं सिद्ध तुं छो सिद्ध
श्रद्धाकर तो थई जा बुद्ध॥
सुख सागर मां आत्मा पूर
दुख बंधा ते भाग्या दूर।
स्वद्रव्ये जो प्रीति जोड़
चार गतिना बंधन तोड़॥

जिनागमकी विराधनाका फल

सुभौम चक्रवर्तीसे बदला लेनेके लिए रसोइयेने देव पर्याय प्राप्त कर चक्रवर्तीको समुद्रमें डुबाकर मारनेका षडयंत्र रचा, जब जहाज डगमगाने लगा तो देवने कहा—यदि णमोकार मंत्र लिखकर पैरसे मिटा दो तो जहाज डुबनेसे बच जाएगा। चक्रवर्तीने ऐसा ही किया, जिसके फलस्वरूप मरकर वह सातवें नरकमें चला गया। आज भी जो जैन साहित्यका बहिष्कार करके अविनय कर रहे हैं, उनकी क्या गति होगी, भगवान जाने।